ठकुरानी बहू का बाजार

ऐतिहासिक उपन्यास

मूल लेखक

श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर

रूपान्तरकार

कालीप्रसाद शुक्ल 'सुरेन्द्र'

साहित्योपाध्याय

प्रकाशक

भारतीय प्रकाशन मण्डल

बनारस-१

प्रकाशक

रघुनाथ प्रसाद

भारतीय प्रकाशन ...

चन्दनसाहू लेन, बनारस

चतुर्थ संस्करण

अप्रैल, १९५२

मूल्य २)

मुद्रक

जयनाथ शर्मा

जनबन्धु मुद्रणालय

विद्यापीठ रोड, बनारस २

आज इस उपन्यास का चौथा संस्करण हिन्दी जगत् के सम्मुख उपस्थित करते समय हम बड़ी प्रसन्नता का अनुभव कर रहे हैं। विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के इस उपन्यास का हिन्दी जगत् में जो आदर हो रहा है वह सर्वथा इसके अनुकूल ही है।

हिन्दी के साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं के चुने हुए रत्नों को हम आपके सम्मुख बराबर रखते रहेंगे। हमें विश्वास है कि आपका सहयोग हमें सदैव मिलता रहेगा।

—प्रकाशक

हम क्यों रुकें ?

प्रस्तुत पुस्तक में गुजराती के सुप्रसिद्ध लेखक श्री रमणलाल बसन्त लाल देसाई की चुनी हुई कहानियाँ हैं। इनकी कहानियाँ जीवन के मार्मिक चलचित्र हैं। सामाजिक चर्चा का चित्रण इतना उत्कृष्ट और स्वाभाविक है कि पुस्तक पूरी पढ़े बगैर छोड़ने को जी नहीं चाहता।

—सजिल्द मूल्य २॥)

लकड़बग्घा

हास्यरस के सुप्रसिद्ध लेखक श्री जी० पी० श्रीवास्तव के तीन प्रहसनों का संग्रह है। प्रहसनों में ग्राम सुधार पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। ग्राम पंचायतों के लिए ऐसे प्रहसन हितकर होंगे।

—मूल्य १।)

ठकुरानी बहू का बाजार

१

रात्रि अधिक बीत गई है। ग्रीष्म ऋतु है। हवा एकदम बन्द है। वृक्ष का एक भी पत्ता नहीं हिलता। ऐसे ही समय महाराज प्रतापादित्य के ज्येष्ठ पुत्र युवराज उदयादित्य अपने शयनागार की खिड़की के समीप बैठे हैं। पास ही उनकी स्त्री सुरमा भी बैठी है।

सुरमा ने कहा—क्या कीजिएगा, सहन कर लीजिए, धैर्य धारण किए रहिए, सुख के दिन भी अवश्य आयेंगे।

उदयादित्य—मेरी और कुछ इच्छा नहीं है। मेरी केवल यही आन्तरिक अभिलाषा है कि यदि मैं यशोहर के राज-प्रासाद में उत्पन्न होकर युवराज न होता, उनका ज्येष्ठ पुत्र होकर उनके राजसिंहासन का—उनकी सारी सम्पत्ति, मान-मर्यादा, ऐश्वर्य, प्रताप, कीर्ति का—अकेला वारिस न होता, बल्कि उनकी एक साधारण से साधारण प्रजा के घर जन्म ग्रहण करता तो मैं अपने को सुखी समझता। क्या कोई ऐसा तप है जिसकी साधना से मेरी यह अभिलाषा पूर्ण हो?

सुरमा ने अधीरता से युवराज के दाहिने हाथ को अपने हाथों में लेकर दबाया और उनके मुख की ओर देखते हुए धीरे-धीरे दीर्घ निश्वास लिया। पति की इच्छा-पूर्ति के लिए वह अपना प्राण भी विसर्जन कर सकती है, परन्तु ऐसा करके भी वह उनकी इस आकांक्षा को पूर्ण नहीं कर सकती। इसीका उसे दुःख है।

युवराज—प्रिये, मैं राजा के गृह में उत्पन्न हुआ, किन्तु सुखी न हो सका। राजप्रासाद के सभी लोगों का ख्याल है कि मैं उत्तराधिकारी होकर पैदा हुआ हूँ, सन्तान होकर नहीं। बाल्यावस्था से ही महाराज की मुझ पर कड़ी निगाह रहती है। उनकी कीर्ति और मान को कायम रख सकूँगा या नहीं, अपने कुल की मर्यादा को बचा सकूँगा या नहीं, इन विषयों में वे सदा संदिग्ध रहते हैं। मेरे प्रत्येक कार्य एवं मेरी चाल-चलन को वे सदा परीक्षा की दृष्टि से देखते हैं, प्रेम की दृष्टि से नहीं। मेरे सगे, मन्त्री, दरबारी और प्रजागण सभी मेरी प्रकृति और कार्यों को देखकर मेरे भविष्य का अनुमान कर चुके हैं। सबने एक स्वर से कहा—'मेरे द्वारा इस राज्य की रक्षा कठिन है। मैं बुद्धिहीन हूँ। मुझमें अच्छे बुरे का विचार नहीं है।'

सुरमा के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये। उसने मन मसोस कर कहा—'ओफ! कोई किस तरह सहन कर सकता है?' उसे दुःख के साथ ही साथ क्रोध भी हुआ। उसने फिर कहा—जो आपको मूर्ख समझते हैं वे स्वयं मूर्ख हैं।

उदयादित्य को जरा हँसी आई। उन्होंने सुरमा की ठोढ़ी पर हाथ रख उसके क्रोध से लाल मुख को हिलाकर कहा—नहीं सुरमा, मुझमें सचमुच राज्य-भार ग्रहण करने की क्षमता नहीं है। इसकी कई बार परीक्षा भी हो चुकी है। मैं जब सोलह वर्ष का था उस समय महाराज ने राज्य के कामों की शिक्षा देने के अभिप्राय से हुसेनखाली परगने का भार मुझे सौंपा था। छः महीने के अन्दर ही भारी गड़बड़ी मच गई। जितना रुपया वसूल होना चाहिये न हो सका। यद्यपि प्रजा मुझे आशीर्वाद देने लगी किन्तु नौकर मेरे विरुद्ध राजा से शिकायत करने लगे। राज-दरबारियों ने निश्चय किया कि युवराज जब प्रजा की इतनी तरफ-दारी करते हैं तो ऐसा ज्ञात होता है वे राज्य-भार न सँभाल

सकेंगे। तब से महाराज की दृष्टि में मैं और भी हेय हो गया। अब तो प्रायः वे मेरी ओर दृष्टिपात भी नहीं करते। कहते हैं, 'यह कुल-कलंक ठीक रायगढ़ के चचा वसन्तराय के समान ही होगा; सितार बजाकर नाचता फिरेगा और राज्य को मिट्टी में मिला देगा।'

सुरमा ने फिर उसी बात को दोहराया—नाथ, सहन कर लीजिए, धैर्य धारण कर रहिए। चाहे महाराज हजार बुरे हों, पर हैं तो पिता ही। इस समय केवल राज्य-वृद्धि की दुराशा उनके हृदय में छाई हुई है। स्नेह के लिए हृदय में स्थान नहीं। जितनी ही आशा पूर्ण होती जायगी उतना ही उनका स्नेह-साम्राज्य बढ़ेगा।

युवराज ने कहा—सुरमा, तुममें बुद्धि है, दूरदर्शिता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं; किन्तु इस विषय में तुम भूल कर रही हो। पहली बात तो यह है कि आशा की अवधि ही नहीं है, दूसरे, पिता के राज्य का जितना विस्तार होगा जितना उन्हें अधिक राज्य-प्राप्ति होगी उतना ही उसकी रक्षा न हो सकने का भय उनके हृदय में बढ़ेगा। जितना ही राज्य-कार्य बढ़ेगा उतना ही वे मुझे अयोग्य समझेंगे।

सुरमा की समझ में कोई भूल न थी, पर तो भी उसने अपनी भूल मान ली। विश्वास बुद्धि से भी आगे बढ़ जाता है, वह किसी प्रकार विश्वास करने लगी मानो उदयादित्य का ही कथन ठीक है।

उदयादित्य कहने लगे—मैं यहाँ के लोगों की कृपा-दृष्टि और अनादर-सूचक दृष्टि न सहन कर कभी-कभी रायगढ़ के दादा साहब के पास चला जाता था। पिताजी को मेरी कोई विशेष चिन्ता न होती थी; मेरे लिए इससे एक अच्छा परि-वर्तन होता था। वहाँ तरह-तरह के बागों की सैर करता, गाँव

वालों के घर आता जाता, रात-दिन राजसी पोशाक में न रहना पड़ता। इसके अतिरिक्त जिस जगह दादाजी रहते हैं उस स्थान पर शोक-सन्ताप का नाम नहीं, मानों वहाँ से दुःख शोकादि बहुत दूर भाग जाते हैं। उनके आस-पास आनन्द, उत्साह, मित्रता और सुख-शान्ति छाई रहती है। वहाँ जाते ही मुझे विस्मृत हो जाता है कि मैं यशोहर का युवराज हूँ। एक बात का और स्मरण हो आया उसे क्या सहज में भूल सकता हूँ? जब मैं अट्ठारह वर्ष का था उस समय मैं रायगढ़ में दादाजी के पास था। वसन्त की हवा चल रही थी। चारो ओर हरे-भरे कुञ्जवनों का सौन्दर्य छिटका था। कोकिल और पपीहे जहाँ-तहाँ फूले आम्रवृक्षों पर कलरव कर रहे थे। उसी समय उसी कुञ्जवन में मैंने रुक्मिणी को देखा।

सुरमा—यह बात मैं पहले भी कई बार सुन चुकी हूँ।

उदयादित्य—एक बार और सुनो कोई-कोई बात ऐसी होती है जो कभी-कभी हृदय पर आघात करती है। यदि उन बातों को हृदय से न निकाल फेकूँ तो उस आघात से हृदय विदीर्ण हो जाय। इस बात को तुमसे कहने में अब भी लज्जा और कष्ट होता है, इसलिए तुमसे बार-बार कहता हूँ। जिस दिन लज्जा और कष्ट का अनुभव न होगा, उस दिन मैं समझूँगा कि मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो गया और उस दिन से फिर कुछ न कहूँगा।

सुरमा—प्राणनाथ! प्रायश्चित कैसा? यदि आपके द्वारा पाप हुआ तो वह पाप का दोष है, आपका नहीं। मैं क्या आप के हृदय से परिचित नहीं हूँ। अन्तर्यामी भगवान क्या आपके हृदयस्थ भावों को नहीं जानते?

उदयादित्य ने फिर कहना शुरू किया—रुक्मिणी की अवस्था मुझसे तीन वर्ष अधिक थी। विधवा और अकेली थी।

दादाजी की उस पर कृपा थी, इसलिए वह रायगढ़ में सुख से जीवन व्यतीत कर रही थी। कुछ स्मरण नहीं पहले-पहल वह किस चातुरी से मुझे फँसा कर ले गई। मध्याह्न के लूक के समान उस समय मेरे मन में एक प्रकार का तेज था। शरीर का रक्त मस्तिष्क पर चढ़ आया था। मार्ग-कुमार्ग, ऊँच-नीच पूर्व और पश्चिम सब मेरी दृष्टि में समान थे। इसके पहले मेरे मन की ऐसी दशा कभी न हुई थी और न इसके पश्चात् ही फिर कभी ऐसा हुआ। न जाने ईश्वर ने इस कमजोर दिल को एक दिन के लिए इतना जोशीला क्यों बना दिया, मानों एक ही क्षण में सारी दुनिया इस कमजोर दिल को खींच कर बुरे रास्ते पर ले गई। हा ईश्वर! मैंने कौन-सा कसूर किया था कि एक ही घड़ी में तुमने उस पाप से मेरी जिन्दगी की सारी स्वच्छता को काली कर दी। पल भर में ही दिन को रात्रि बना डाला। मानों मेरे हृदय के उपवन में पुष्पित मालती और जूही के फूल भी इसके प्रभाव से काले हो गये।

इसके आगे उदयादित्य कुछ न बोल सके। उनका मुँह पीला पड़ गया और आँखें भिप गईं। मानों उनके सारे शरीर में बिजली का तार दौड़ गया। सुरमा तनिक अनखा कर बोली—आपको मेरे सिर की सौगन्ध इसे अब आगे न कहिए।

थोड़ी देर तक उदयादित्य मौन रहे। उसके बाद कहने लगे—क्या बताऊँ, जब हृदयका जोश शान्त हुआ, तब सब वस्तुएँ पूर्ववत् दिखाई देने लगीं, जब मैंने विश्व को सपने का एक दृश्य न मान कर प्रकृति का कार्य-स्थल माना तब मेरे मन की जो दशा हुई वह तुमसे क्या कहूँ! कहाँ से कहाँ आ गया! सौ, हजार, लाख कोस दूर पाताल के भयंकर गढ़े में मानों क्षण भर में गिर पड़ा। दादाजी बुला कर ले गये। मैं उन्हें कैसे मुँह दिखाता? सत्य बात तो यह है कि उसी समय

से मुझे रायगढ़ को त्यागना पड़ा, पर दादाजी को बिना मुझसे मिले कब चैन है ? वे बारम्बार मुझे बुलाते हैं, किन्तु मुझे इतनी लज्जा मालूम पड़ती है कि मैं वहाँ किसी भी प्रकार जाना नहीं चाहता। दादाजी के बुलाने पर भी जब मैं वहाँ नहीं जा सकता तो वे खुद ही मुझे तथा विभा को देखने यहाँ आ जाते हैं। उन्हें न तो किसी प्रकार की डाह है और न ग्लानि। उन्होंने कभी मुझसे रायगढ़ न आने का कारण भी नहीं पूछा। हम लोगों को देख कर ही उन्हें बहुत बड़ी प्रसन्नता होती है, इसी लिए कभी-कभी वे दो-एक दिन के लिये यहाँ आ जाते हैं।'

उदयादित्य ने मुसकुराते हुए अपनी बड़ी-बड़ी आखों में अत्यन्त रसमय कोमल प्रेम भर कर सुरमा की ओर देखा।

सुरमा ने मन में ही कहा—'देखूँ, इस बार क्या कहते हैं।' उसने जरा सिर नीचा कर लिया। उसका चित्त कुछ चञ्चल हो रहा था। युवराज ने दोनों हाथों को उसके गालों पर रख कर बहुत धीरे से उसके झुके हुए मुँह को ऊपर उठाया और उसके एकदम समीप जा बैठे। धीरे-धीरे उनके मस्तक को अपने कन्धे पर रखकर प्रेम से आलिंगन करते हुए कहा—'उसके बाद जो कुछ हुआ वह मैं तुम्हारे मुँह से सुनना चाहता हूँ प्रिये ! तुम्हारा यह बुद्धि से दीप्त शान्तिमय हास्य से खिला सरस प्रेम से पूर्ण प्रसन्न मुँह कहाँ से उदित हुआ। मेरे उस गहन अन्धकार के नष्ट होने की क्या कभी आशा थी ? मेरे लिए ऊषा, आशा और प्रभा तुम्हीं हो। यदि तुम न होती तो मैं उसी गहन अन्धकार में पड़ा रहता। किस मंत्र-शक्ति से उसे तुमने क्षण भर में दूर कर दिया।' युवराज ने बार-बार सुरमा का चुम्बन लेकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। सुरमा ने कुछ न कहा। उसके नेत्र आनन्दाश्रु से पूर्ण हो गये।

युवराज ने कहा— इतने दिनों के उपरान्त मैंने यथार्थ में

अपने जीवन के अवलम्ब को प्राप्त किया। तुमने कहा कि मैं मूर्ख नहीं हूँ। आज मुझे इस पर विश्वास हुआ। तुमसे मुझे शिक्षा मिली कि बुद्धि अँधेरी गली के समान टेढ़ी-मेढ़ी ऊँची-नीची अथवा संकीर्ण नहीं है। यह राज-पथ की तरह सीधी, बराबर और खूब विस्तृत है। पहले मुझे अपने ही ऊपर घृणा थी। मैं स्वयं अपना तिरस्कार करता था और किसी कार्य के करने में हृदय उत्साहित न होता था। सर्वदा साहस-विहीन कापुरुष-सा बना रहता था। जिसे हृदय सत्य मानता था उसे संशय से भरी हुई बुद्धि असत्य कह कर मुझे भटका दिया करती थी। मेरे साथ कोई किसी प्रकार का व्यवहार करता था तो मैं सहन कर लेता था। स्वयं भले बुरे के विचारने की चेष्टा नहीं करता था। इतने दिनों के पश्चात् आज मुझे ज्ञात हुआ कि मैं भी कुछ हूँ। मैं एकदम मिट्टी का पुतला नहीं हूँ। इतने दिनों तक मानों मैं गर्त में गिरा था। तुमने मुझे प्रकाश में लाकर मेरा उद्धार किया है। प्रिये, तुमने मुझे एकदम परिवर्तित कर दिया है। अब मेरा हृदय जिसे अच्छा कहेगा उसे मैं अवश्य करूँगा। मेरा तुम पर अटल विश्वास है। जब तुम्हीं मुझे प्रेरित करती हो तो मैं अपने ऊपर विश्वास क्यों न करूँ। तुम्हें इस नवनीत से कोमल शरीर में इतना बल कहाँ से मिला जो मुझे इतना बलवान बना दिया?

सुरमा पति को दोनों भुजाओं से लपेट उनकी छाती से चिपट गई। आत्मत्यागपूर्ण दृष्टि से उन्हें निहारने लगी। उसके प्रेमपूर्ण नेत्रों ने स्पष्ट कह दिया—मेरा इस संसार में अन्य कोई नहीं एकमात्र तुम्हीं हो। तुम्हीं से सब कुछ है।

बाल्यावस्था से ही युवराज अपने स्वजनों से अपमानित होते आए हैं; इसीलिये कभी-कभी सूनी रात्रि में सुरमा से सैकड़ों बार कही हुई पुरानी कथा कह कर अपने हृदय का भार हलका करते हैं।

उदयादित्य ने कहा—सुरमा, इस प्रकार और कितने दिन

बीतेंगे ? इधर सभी राजदरबारी मुझ पर एक तरह की अद्भुत कृपा-दृष्टि रखते हैं उधर अंतःपुरी में माताजी तुम्हारी खबर लेती हैं। दास-दासी तक तुम्हारा कुछ आदर नहीं करतीं। मुझमें किसी को कुछ कहने का साहस नहीं होता; इसीलिए मौन धारण किये रहता हूँ। सब सहन कर लेता हूँ। सुरमा, तुम्हारा स्वभाव कुछ तेज है, किन्तु तुम भी मौन होकर सब सहन कर लिया करो। जब मेरे द्वारा तुम्हें कुछ भी सुख न मिल सका और तुम्हें मेरे कारण अपमानित होकर सर्वदा दुःख ही सहन करना पड़ा तब यदि मेरे साथ तुम्हारा पाणिग्रहण न हुआ होता तो अच्छा था।

सुरमा ने कहा—प्राणेश्वर, आप यह कैसी बात कहते हैं ? मेरे लिये यही समय ठीक है। मैं सुख के काल में आपकी कौन-सी परिचर्या कर सकती ? सुख के काल में तो मैं केवल विलास और आमोद की वस्तु थी, एक प्रकार की क्रीड़ा की सामग्री थी। इन सब कष्टों को सहनकर मेरे हृदय में यह सुख जाग्रत है कि आप मुझे किसी प्रकार अपने कष्टों का अवलम्ब समझ रहे हैं। आपके सहवास में मेरे लिये दुःख सहन करने में भी जो असीम प्रसन्नता है उसका मैं पूर्णतया उपभोग कर रही हूँ। अगर मुझे कुछ दुःख है तो केवल इसी बात का कि मैं आपके सम्पूर्ण क्लेशों को स्वयं क्यों न सहन कर सकी ?

उदयादित्य क्षण भर सुरमा की ओर एकटक देखते रहे फिर कहने लगे—प्रिये, मैं अपनी कुछ चिन्ता नहीं करता। मैं सब कुछ सहन कर सकता हूँ। मेरे लिये तुम्हें कष्ट सहन करने की क्या आवश्यकता है ? पतिव्रता स्त्री का पति के प्रति जैसा कर्तव्य उचित है उसी प्रकार का व्यवहार तुम मेरे साथ किया करती हो। मुझे कोई भी कष्ट न सहन करना पड़े इस बात पर तुम सर्वदा दृष्टि रखती हो। मेरे मानस में जब दुःख का प्रादुर्भाव होता है तब तुम सदा एक चिरसहायक की भाँति मुझे आश्वासित

करती हो, किन्तु मैं तुम्हारा पति होते हुए भी अपमान अथवा ग्लानि के मानसिक कष्ट से तुम्हारी रक्षा न कर सका। तुम्हें किसी प्रकार का सुख भी न दे सका। तुम्हारे पिता श्रीपुराधिपति मेरे पिता की अधीनता स्वीकार नहीं करते और न अपने को यशोहराधीश के आश्रित ही समझते हैं। इसके बदले मेरे पिताजी तुम्हारा तिरस्कार कर अपने महत्व की रक्षा करना चाहते हैं। कोई तुम्हें क्यों न अपमानित करे, पर वे उस ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते। उनकी धारणा है कि उन्होंने पुत्रवधू के रूप में जो तुम्हें अपने गृह में स्थान दिया यही तुम्हारे लिये यथेष्ट है। जब ये बातें सहन-शक्ति के बाहर हो जाती हैं तो कभी-कभी इच्छा होती है कि मैं केवल तुम्हें अपने साथ लेकर, और इन सबका परित्याग कर कहीं चल दूँ। मैं तो पहले ही चला गया होता, किन्तु तुम्हीं ने मेरे पैरों में बेड़ी डाल रखी है।

रात्रि अधिक व्यतीत हो गई। सायंकाल के नक्षत्र अस्त हो चले हैं और मध्य रात्रि की नक्षत्रावलि निकल रही है। प्रासाद के मुख्य द्वार पर सन्तरियों की पद-ध्वनि कुछ-कुछ सुन पड़ती है। समस्त जगत निद्रा देवी के अंक में सुख से शयन कर स्वप्न-जगत का भ्रमण कर रहा है। नगर अन्धकारमय हो रहा है। सभी नगरवासियों के गृह-कपाट बन्द हैं। दो-एक सियारों के अतिरिक्त नगर का कोई भी निवासी बाहर दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है। युवराज के शयनकक्ष का द्वार बन्द था। अकस्मात बाहर से किसी ने दरवाजे को थपथपाया। युवराज ने तुरंत द्वार खोल दिया देखा उनकी बहन विभा ही सामने खड़ी है। पूछा—क्या बात है विभा ? इस समय तुम यहाँ क्यों आई हो ?

विभा ने उत्तर दिया—'मालूम होता है, सर्वनाश हुआ।' सुरमा और युवराज दोनों एक साथ प्रश्न करने लगे—क्यों, क्या बात है? कम्पित विभा ने धीरे से कुछ कहा। कहते कहते वह अपने को

सँभाल न सकी। बीच ही में रोकर बोली–भैया ! अब क्या होगा?

युवराज ने कहा—रोओ मत। मैं अभी जाता हूँ।

विभा बोली—नहीं, तुम न जाओ।

उदयादित्य—क्यों विभा ?

विभा—तुम्हारे जाने का समाचार ज्ञात हो जाने पर शायद पिताजी तुम्हारे ऊपर क्रोधित हों।

सुरमा बोली—यह समय ऐसे विचार करने का नहीं है।

युवराज कपड़े पहन कर और तलवार ले कर जाने के लिये उद्यत हो गये। विभा ने उनका हाथ पकड़ कर कहा—भैया, तुम न जाओ। किसी अन्य को भेज दो। मेरा जी न जाने कैसा करता है।

युवराज ने कहा—घबराओ नहीं। इस समय मेरे जाने में बाधा न डालो। अब समय नहीं है।

उपरोक्त बातें कह युवराज उदयादित्य उसी समय अपने कमरे से बाहर निकल गये।

विभा ने सुरमा का हाथ पकड़ कर कहा—भाभी, यदि पिताजी को मालूम हो जाय तब ?

सुरमा बोली—तब और क्या होगा ? लोग उन्हें स्नेह की दृष्टि से थोड़े ही देखते हैं। यदि कुछ स्नेह है भी तो वह उससे वञ्चित हो जायँगे, बस इतना ही न। इसके लिये कोई कहाँ तक डरे ?

विभा ने कहा—नहीं भाभी मुझे बड़ा भय मालूम होता है। यदि किसी प्रकार का दण्ड ही दें तो ?

सुरमा ने दीर्घ निश्वास छोड़ कर कहा—मुझे पूर्ण विश्वास है कि जिसकी कोई रक्षा नहीं करता उसके रक्षक भगवान हैं। प्रभो! तुम अपने नाम पर धब्बा न लगने देना। तुम्हारे ऊपर जो मेरा अटूट विश्वास है उसे भंग न होने देना यही मेरी तुमसे विनय है।

२

मन्त्री ने पूछा—क्या ऐसा करना ठीक होगा ?

प्रतापादित्य—कौन-सा कार्य ?

मन्त्री—कल जिसे करने के लिये हुक्म मिला था ?

प्रतापादित्य (क्रोधित हो कर)—कल क्या करने का हुक्म मिला था ?

मन्त्री—चाचा साहेब के बारे में ।

प्रतापादित्य और भी क्रोधित हो कर बोले—चाचा के बारे में क्या ?

मन्त्री—श्रीमान ने आज्ञा दी थी कि यशोहर आते समय जब वसन्तराय सिमलतली की चट्टी में रुकें तब—

प्रतापादित्य ने भृकुटि टेढ़ी कर कहा—तब क्या ? पूरी बात कहो ।

मन्त्री—तब दो पठान वहाँ जायँ और—

प्रतापादित्य—तब !

मन्त्री—उन्हें खत्म कर दें !

प्रतापादित्य अत्यन्त क्रुद्ध हो कर बोले—मन्त्री ! तुम बालकों के समान क्यों बातें करते हो ? एक प्रश्न का उत्तर सुनने के लिए व्यर्थ ही दस बातें क्यों पूछते हो? मतलब की बात पूछते हुए क्या तुम्हें लज्जा आती है ? मालूम होता है राज्य के कार्यों में भाग लेने की क्षमता अब तुममें नहीं रही । अब वृद्धावस्था की चिन्ता का समय आ गया है । अब तक तुमने अपने पद से इस्तीफा देने के लिए प्रार्थना-पत्र क्यों नहीं दिया ?

मन्त्री—महाराज ने मेरे अभिप्राय पर ध्यान नहीं दिया ?

प्रतापादित्य—मैंने खूब ध्यान दिया है । तुम्हारा मतलब हम

खूब अच्छी तरह समझते हैं। अच्छा, एक बात का उत्तर दो। हम जो कुछ करना चाहते हैं उसे क्या तुम जबान पर भी नहीं ला सकते? तुम्हें हमारे उस कार्य पर स्वयं भी विचार करना चाहता था। जब हम वह कार्य करने को उद्यत हुए तो तुम्हें समझना चाहिए कि उसका कोई बहुत बड़ा कारण अवश्य है। मैंने धर्माधर्म पर भी अच्छी तरह सोच-विचार लिया है।

मन्त्री—महाराज, मैं तो—

प्रतापादित्य—रुको, मेरी बात बीच में न काटो अच्छी तरह सुन लो। जब हम इस कार्य को करने के लिए—अर्थात् अपने चाचा की हत्या करने के लिए—तैयार हुए हैं तब मैंने तुमसे अधिक इस विषय पर विचार कर लिया है। तुम्हें पाप का ध्यान होगा, किन्तु इसमें पाप नहीं। मुसलमानों ने इस पवित्र भारत-भूमि में आ कर बड़ा उत्पात करना शुरू कर दिया है। उनके उपद्रव और अत्याचार से हमारा धर्म भी लुप्त होना चाहता है। क्षत्रियों ने यवनों को अपनी लड़कियाँ देनी शुरू कर दी है। हम हिन्दुओं का आचार-विचार भी दिन-प्रति-दिन गिरता जा रहा है, इन यवनों को भारत-भूमि से भगा कर हम सनातन धर्म की रक्षा करेंगे। इस प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए हमें विशेष बल की आवश्यकता है। हमारी इच्छा है कि सम्पूर्ण बंग-प्रदेश के राजा हमारे आज्ञानुसार कार्य करने के लिए तत्पर हो जायँ। यवनों के पक्षपातियों को बिना मारे हमारे उद्देश्य की पूर्ति न होगी। चाचा वसन्तराय हमारे पूजनीय हैं, किन्तु विवश हो कर कहना पड़ता है कि वे हमारे कुल में कलंक हैं। उन्होंने यवनों की दासता स्वीकार कर ली है। ऐसे व्यक्तियों के साथ हम कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहते। घाव हो जाने पर अपनी भुजा भी काट देनी पड़ती है। अपने कुल के कलंक और बंगाल के व्रण-स्वरूप चाचा को

काट कर अपने राजकुल और बंग प्रदेश की रक्षा करना ही हमारा अभिष्ट है।

मन्त्री—इस सम्बन्ध में तो मैं महाराज से सहमत था।

प्रतापादित्य—सहमत नहीं थे, बल्कि मतभेद था। सच बोलो। देखो मन्त्री, जब तक हमारा तुम्हारा मतभेद रहे तब तक तुम अपना मत प्रकट किया करो। यदि तुममें इतना साहस नहीं है तो तुम मन्त्री-पद पर रहने के योग्य नहीं। यदि तुम्हारे हृदय में किसी प्रकार की शंका हो तो स्पष्ट रूप से मुझसे कहो और मुझे उस पर विचार करने का अवसर दो। तुम समझते हो कि चाचा का वध करना हर हालत में पाप है! बोलो, मैं ठीक कह रहा हूँ न। सुनो, जब अपने पिता की आज्ञा से परशुराम ने अपनी माता का वध कर डाला था तो धर्म की रक्षा के निमित्त और उसके अनुरोध से मैं अपने चचा को क्या नहीं मार सकता?

धर्माधर्म के विषय में वस्तुतः मन्त्री का राजा से कोई मत-भेद न था। मन्त्री जितनी दूर की बात सोच रहा था वहाँ तक राजा न पहुँच सके थे। मन्त्री अच्छी तरह समझता था कि यद्यपि इस समय के उपस्थित विषय में संकोच दिखाने से राजा क्रुद्ध होंगे, किन्तु बाद में फल की बात पर ध्यान दे कर खुश भी होंगे। ऐसा न करने से राजा के हृदय में कभी सन्देह भी पैदा हो सकता था।

मन्त्री बोला—मेरे कथन का अभिप्राय था कि इस समाचार को सुन कर दिल्लीश्वर नाराज होंगे।

प्रतापादित्य अत्यन्त क्रोधित हो उठे। उन्होंने कहा—हाँ हाँ यह मैं भी समझता हूँ। वे नाराज हुआ करें। नाराज होने से उन्हें कोई रोक नहीं सकता, किन्तु मैं इसकी चिंता नहीं करता। वे हमारे ईश्वर नहीं है। उनके क्रोध से काँपनेवालों की कमी

नहीं है। मानसिंह, बीरबल, हमारे कुल-कमल वसंतराय तथा तुम भी अब उन्हीं में हो, लेकिन सब तुम्हारे ही समान नहीं हैं।

मन्त्री ने मुस्कुराकर कहा—जी हाँ, केवल क्रोध की परवाह तो इस दास को भी नहीं है, किन्तु उस क्रोध के साथ-साथ शस्त्र-प्रयोग की भी आशंका हो तो अवश्य ध्यान देना पड़ेगा। दिल्लीश्वर का मुकाबला करने के लिये कम-से-कम पचास हजार सैनिकों की आवश्यकता पड़ेगी।

प्रतापादित्य इसका कुछ भी जवाब न दे सके। जरा रुक कर बोले—मन्त्री, बादशाह का भय दिखा कर मुझे अपने कर्तव्य से विमुख करने का प्रयत्न न करो। ऐसा होने से मैं अपनी बेइज्जती समझता हूँ।

मन्त्री—इस खबर को सुन कर प्रजा क्या कहेगी ?

प्रतापादित्य—जब वह सुनेगी तब तो।

मन्त्री—ऐसी बातें अधिक दिनों तक गुप्त नहीं रह सकती। इस समाचार के फैलते ही सारा बंगाल आपका विरोध करने लगेगा। इस काम के करने में जो आपका अभिष्ट है उसका निर्मूल हो जायगा। लोग आपको जाति से बहिष्कृत भी कर सकते हैं और नाना प्रकार की विपत्तियाँ भी सहन करनी पड़ सकती हैं।

प्रतापादित्य—देखो, मैं फिर तुम्हें स्पष्ट कह देता हूँ कि मेरे द्वारा कोई भी कार्य भलीभाँति सोच-विचार कर ही किया जाता है। अतः तुम मुझे व्यर्थ का भय दिखा कर निरुत्साहित करने की चेष्टा न किया करो। मैं स्वयं सब कुछ समझ सकता हूँ। मेरे पथ में बाधक हो कर न खड़े हुआ करो।

मन्त्री कुछ न बोले। प्रतापादित्य ने दो आज्ञाएँ दे रखी थी। पहली यह कि उनसे मतभेद रहने पर वे अपना मत बराबर प्रकट करते रहें। दूसरी यह कि उनकी इच्छा के विपरीत

अपना मत प्रकट कर वे किसी कार्य में उनका उत्साह भंग न किया करें। मन्त्री आज तक इन दोनों एक दूसरे के विपरीत आज्ञाओं का पूर्णतया पालन न कर पाये।

मन्त्री ने फिर कुछ क्षण के बाद कहा—महाराज, दिल्लीश्वर—

प्रतापादित्य ने बीच में ही झिड़क कर कहा—फिर वही दिल्लीश्वर ? मन्त्री, यदि बार-बार दिल्लीश्वर का नाम न ले कर तुम उस परमपिता परमेश्वर का नाम लिया करते तो कहीं अधिक सुन्दर होता। याद रखो, मेरे इस कार्य की पूर्ति के पहले अब कभी दिल्लीश्वर का नाम मेरे सामने न लेना। आज मध्याह्नोत्तर मेरी आज्ञा-पूर्ति का समाचार मिल जाने पर तुम मेरे सामने दिल्लीश्वर का नाम जप कर अपना हृदय शान्त कर लेना। अभी अपने हृदय के आवेग का शमन किये रहो।

मन्त्री फिर मौन हो रहे। बादशाह का प्रसंग बदल कर वे बोले—महाराज, युवराज उदयादित्य—

बात काटते हुए प्रतापादित्य ने कहा—दिल्लीश्वर और प्रजा का प्रसंग छोड़ कर अब उस नालायक लड़के की बात छेड़ कर मुझे भय दिखलाने की चेष्टा करते हो क्या ?

मन्त्री—महाराज, आपको भ्रम हो रहा है। आपके कार्य में बाधा पहुँचाने की मेरी इच्छा नहीं है।

राजा ने सावधान होकर कहा—कहो क्या कहना चाहते थे?

मन्त्री बोले—कल रात्रि में युवराज अश्वारूढ़ हो न जाने कहाँ चले गये। अभी तक वापस नहीं लौटे।

राजा क्रोधित होकर बोले—वह किस ओर गया है ?

मन्त्री—पूर्व दिशा में।

राजा ने दाँत पीस कर कहा—किस समय गया ?

मन्त्री—कल अर्धरात्रि के समय !

राजा—श्रीपुर के जमींदार की लड़की क्या यहीं है ?

मन्त्री—जी हाँ।

राजा—वह अपने पिता के यहाँ रहे इसी में कल्याण है। मन्त्री ने कुछ उत्तर न दिया।

प्रतापादित्य ने फिर कहा—उदयादित्य युवराज होने के योग्य कभी न था। उसने बाल्यावस्था से ही प्रजा से अपना सम्पर्क बढ़ा लिया। मेरे कुल में ऐसा पुत्र जन्म लेगा इसे कौन जानता था? सिंह का बालक स्वभावतः सिंह ही होता है उसमें सिंहत्व भरने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हाँ जान पड़ता है। कि उसमें अपने मातृकुल के गुण आ गये हैं। श्रीपुर में विवाह होने से और भी बात बन गई। इसीसे उसका एकाएक अधःपतन हो गया है। छोटे कुमार को ईश्वर मेरे कुल के अनुरूप बनावें। यही मेरी कामना है जिससे अन्तकाल में मेरे हृदय में इस विषय की चिन्ता न रहे। हाँ, तो क्या वह अभी तक वापस नहीं आया?

मन्त्री—जी नहीं, महाराज!

राजा ने पृथ्वी पर पैर पटक कर कहा—उसके साथ कोई सिपाही क्यों नहीं गया?

मन्त्री—जाने के लिये तो सिपाही प्रस्तुत था, किन्तु वे स्वयं उसे साथ न ले गये।

राजा—उसे छिप कर उसके साथ जाना चाहता था।

मन्त्री ने कहा—यदि किसी प्रकार का उनपर सन्देह होता तब तो उनका पीछा करता।

राजा—सन्देह क्यों न हुआ? मन्त्री, तुम मुझे समझाने की चेष्टा करते हो कि उन लोगों ने बहुत अच्छा काम किया। मुझे इन बातों के समझाने का प्रयत्न न करो। सिपाहियों और प्रहरियों ने अपने कर्तव्य में बहुत बड़ी भूल की। उस समय राजद्वार पर कौन था, उसे अभी बुलाओ। प्रहरियों की इस लापरवाही से यदि मेरे उद्देश्य की पूर्ति में बाधा पड़ी तो जान रखो, इसका परिणाम

बहुत भयंकर होगा। तुम्हारे प्रति भी मेरा क्रोध उग्र रूप धारण कर सकता है। मेरे साथ तुम बराबर बहस करते आ रहे हो। इसका कोई दूसरा उत्तरदायी नहीं है।

प्रतापादित्य ने प्रहरियों को बुलवा भेजा। कुछ देर गम्भीर रह कर मन्त्री से पूछा—हाँ, तुम बादशाह के सम्बन्ध में क्या कहना चाहते थे?

मन्त्री–आपके विरुद्ध बादशाह के समक्ष नालिश की गई है।

प्रतापादित्य—किसने की है? तुम्हारे युवराज ने तो नहीं?

मन्त्री—जी नहीं महाराज, मुझे क्या पता कि किसने ऐसा किया है। उसका अभी कुछ पता नहीं।

प्रतापादित्य—जो कोई भी हो उसके लिए अधिक चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। बादशाह का विचार मैं करूँगा। उन्हें दण्ड देने का मैं ही प्रयत्न कर रहा हूँ। अरे, वे दोनों पठान अभी वापस नहीं लौटे? उदयादित्य भी अभी तक नहीं लौटा? प्रहरी को फौरन बुलाओ।

३

युवराज उदयादित्य निर्जन मार्ग पर तेजी के साथ घोड़ा दौड़ाते हुए निःशंक बढ़े चले जा रहे हैं। यद्यपि रात्रि सन्नाटी और कृष्णपक्ष की है, किन्तु मार्ग बहुत ही सीधा है। घोड़े की पद-ध्वनि चारों ओर गूँज रही है। गीदड़ और कुत्तों के अतिरिक्त कहीं कोई दृष्टिगोचर नहीं होता। कभी-कभी पार्श्ववर्ती वृक्षों पर जुगनू चमक उठते हैं। झिल्लियों की झङ्कार चारों ओर गूँज रही है। मनुष्य की तो छाया भी नहीं दिखाई देती है। उसी वेग से पाँच क्रोस रास्ता तय कर एक बड़े मैदान में पहुँच कर युवराज ने घोड़े की चाल धीमी कर दी। वर्षा होने के कारण जमीन गीली हो गई

थी और घोड़े के पैर जमीन में धँस रहे थे। फिसलन होने के कारण कई बार घोड़ा गिरने से बचा। इतनी दूर रास्ता एक वेग से तय करने के कारण घोड़ा थक कर चूर हो रहा था और जोरों से साँस ले रहा था। पसीने से लथपथ होकर मुँह से गाज फेंक रहा था। गर्मी के मारे बड़ी व्याकुलता थी। अब भी मार्ग बहुत कुछ तय करना बाकी था। कुछ देर के बाद उदयादित्य एक सड़क पर पहुँचे। उन्होंने घोड़े की पीठ थपथपा कर शाबाशी देते हुए कहा—'सुग्रीव, एक बार और थोड़ा चाल दिखाओ। अब अधिक परिश्रम नहीं है।' घोड़े ने कान खड़े कर मालिक की आज्ञा का पालन किया। उसने अपनी चाल इतनी तेज कर दी कि युवराज खुद उसकी गति पर चकित हो गये। उसी गति से चलते हुए रात्रि के तीसरे पहर वे सिमलतली चट्टी के फाटक पर पहुँचे। घोड़ा पस्त होकर गिर पड़ा और फिर न उठा। युवराज के पुकारने पर भी जब वह न हिला तब उन्होंने उसे ध्यानसे देखा। फिर फाटक के पास जा कर धक्का देने लगे। खिड़की से झाँक कर एक आदमी ने पूछा 'तुम कौन हो? क्यों फाटक पर धक्का दे रहे हो?'

युवराज बोले—कुछ विशेष आवश्यकता है, फौरन् द्वार खोलो।

उस आदमीने कहा—जो कुछ पूछना हो पूछो, फाटक खोलने का क्या काम है?

युवराज ने पूछा—रायगढ़ के राजा बसन्तराय क्या यहाँ हैं?

वह बोला—सायंकाल वे आनेवाले थे, लेकिन अभी तक नहीं आये। मालूम होता है, कोई विशेष अड़चन पड़ जाने के कारण वे नहीं आ सके।

युवराज ने जेब से निकाल कर दो रुपया उसे दिया। उसने फौरन द्वार खोल कर दोनों रुपये ले लिये। फिर युवराज ने कहा—भाई, मैं जरा देखना चाहता हूँ कि तुम्हारी चट्टी में कौन-कौन लोग हैं। क्या तुम मुझे ऐसा करने दे सकते हो?

उसने युवराज को सन्देहपूर्ण दृष्टि से देखकर कहा—नहीं ऐसा नहीं हो सकता।

युवराज—मैं राज-कर्मचारी हूं। दो अपराधी भागे हैं, उन्हीं की तलाश करना है—मुझे न रोको।

उपरोक्त बात कहकर उदयादित्य चट्टी के भीतर घुस गये। उस आदमी ने फिर कुछ न कहा। सब जगह खोज डालने पर भी वसन्तराय अथवा किसी पठान का पता न लगा। केवल दो नव-युवतियाँ सो रही थीं। युवराज को इस तरह ताकते देखकर वे चौंक पड़ी और बोलीं—तू कौन है? इस तरह क्या देख रहा है?

युवराज उनको कुछ उत्तर न देकर बाहर सड़क पर निकल आये और विचार करने लगे—क्या कारण है, वे नहीं आये। खैर अच्छा ही हुआ। लेकिन यदि वे किसी दूसरी चट्टी में ठहर गये हों और पठान भी वहाँ तक पहुँच गये हों तो!

युवराज इसी प्रकार सोचते आगे बढ़े जा रहे थे कि उन्होंने एक सवार को आते देखा। सवार उन्हीं की ओर आ रहा था। पास आने पर उन्होंने उससे पूछा—कौन है—रतन?

सवार ने घोड़े से फौरन उतरकर युवराज को प्रणाम किया और बोला—आप यहाँ कैसे?

युवराज—यह पीछे बताऊँगा। पहले यह बतलाओ कि दादाजी कहाँ हैं?

रतन—वे तो आज इसी चट्टी में आने वाले थे।

युवराज—लेकिन वे यहाँ नहीं दिखलाई दिये।

रतन बोला—वे तीस व्यक्तियों को साथ लेकर यशोहर के लिये चले हैं और मुझसे यहीं मिलने को कहा था।

युवराज—खैर तुम मुझे अपना घोड़ा दो और पैदल आओ मैं उनकी तलाश में जा रहा हूं।

४

सूनी रात्रि में, निर्जन पथ पर एक वृक्ष के नीचे एक पालकी के अन्दर वसन्तराय बैठे हैं। आस-पास केवल एक पठान को छोड़कर और कोई नहीं है। चारो ओर निःस्तब्धता छाई है। कहीं से किसी प्रकार का शब्द नहीं सुनाई देता। एकाएक शान्ति भंग करते हुए वसन्तराय ने पठान से पूछा—खाँ, तुम और लोगों के साथ क्यों नहीं गये? पठान ने उत्तर दिया—हुजूर, मैं आपको इस अँधेरी रातमें, ऐसी सुनसान जगह में अकेला छोड़ कर कैसे चला जाता! आपने मेरी भलाई की और अपने आदमियोंको मेरे माल-असबाव और आदमियोंको बचाने के लिए भेज दिया, किसी को अपने पास नहीं रक्खा! क्या मैं इतना बड़ा एहसान फरामोश और मतलबी हूँ कि हुजूरको छोड़ कर अपना रास्ता नापूँ? आपके किये हुए एहसानों का बदला मैं कभी न चुका सकूँगा।

वसन्तराय ने मन ही मन उस पठान की बड़ी प्रशंसा की। थोड़ी देर के बाद खाँ के चेहरे की ओर देख कर कहा—खाँ, तुम किसी अच्छे घराने के आदमी जान पड़ते हो। क्या मेरा खयाल ठीक है?

पठान अदब के साथ सलाम कर कहा—हुजूर बजा फरमाते हैं। बड़ा तअज्जुब होता है कि आपको यह कैसे मालूम हुआ।

वसन्तराय ने कहा—खैर, यह बताओ कि आज कल तुम्हारा वक्त कैसे गुजरता है?

पठान ने दीर्घ निश्वास ले कर कहा—हाल क्या बताऊँ हुजूर! जिस मुसीबत का सामना करना पड़ता है वह मेरा ही दिल जानता है। पिछले दिनों की याद कर दिल पर जो ठेस पहुँचती है उसे मैं किसी तरह कह नहीं सकता। खेती-बारी के काम से

जो सूखी रोटी नसीब हो जाती है उसीसे किसी तरह दिन बिताता हूँ। खुदा किसी को पहले बड़ा बना कर बाद में उसकी मिट्टी खराब न करे, ऊँचे पर चढ़ाकर नीचे न ढकेल दे। इससे तो कहीं अच्छा है अगर वह शुरू से ही छोटा बना कर रखे। पहले का सुख और फिर बाद का दुःख नहीं सहा जाता।

वसन्तराय उसकी बातों पर प्रसन्न हो कर बोले—वाह! तुमने तो बड़े मार्के की बात कही। तुम बिलकुल ठीक कह रहे हो।

पठान ने मन में सोचा-यह बूढ़ा तो बड़ा रसीला जान पड़ता है। यह गरीबों की बहुत कुछ भलाई करता होगा।

वसन्तराय उस पठानकी बातों पर मन ही मन सोचने लगे। अन्त में उन्होंने उससे पूछा क्यों भाई, तुम फौज में क्यों नहीं भरती हो जाते? तुम तो अच्छी तरह पलटन में काम कर सकते हो।

पठान ने फौरन कहा—आपने ठीक कहा—हुजूर। मैं भी यही चाहता हूँ। मेरे घराने में तो सभी तलवार चलानेवाले थे।

वसन्तराय बोले—पठान, अगर तुम्हारी यह दिली मंशा है तो पूरी हो सकती है। तुम भी अपने बाप-दादों की तरह बन सकते हो। लेकिन तुम्हें उनकी तरह तलवार चलाने की जरूरत न पड़ेगी। देखो, मैं अब बुड्ढा हो गया हूँ। मेरी प्रजा बड़े आराम से है। मैंने अब तलवार हाथ में लेना छोड़ दिया है और भगवान् न करे कभी उसकी जरूरत पड़े। अब तो मैंने तलवार के बदले एक दूसरी ही चीज हाथ में ले रखी है। देखोगे उस चीज को?—यह कहकर उन्होंने पास में रखे हुए सितार के तारों को जरा-सा छेड़ दिया।

पठान ने उनकी हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा—हुजूर का कहना बहुत ठीक है। गाना-बजाना एक ऐसी चीज है जिससे सारी दुनिया वश में की जा सकती है। दुश्मन को भी दोस्त बनाया जा सकता है।

वसन्तराय पठान के अन्तिम वाक्य पर विचार करने लगे। विचार करते-करते वे क्षुब्ध हो उठे। अन्त में कुछ देर के बाद बोले—ठीक कहते हो, पठान। संगीत ऐसी ही वस्तु है। तलवार से तो दुश्मन को मार कर दुश्मनी दूर की जाती है, लेकिन संगीत से दुश्मन को बिना मारे ही उसे मिलाया जा सकता है। दवा वही है जो मर्ज को दूर कर दे। अगर मरीज को दूर कर मर्ज से छुटकारा मिला तो क्या उसे मर्ज का अच्छा होना कहेंगे ?

उपरोक्त बातें कहते-कहते वसन्तराय उत्तेजित हो उठे। उन्होंने पठान को अपने समीप आनेका संकेत किया और उसके पास आने पर कहा—तुम एक बार रायगढ़ आना। यशोहरसे लौटने पर मैं तुम्हारी मदद करूँगा। मेरा दिल तुमसे बहुत खुश है।

वसन्तराय की बात सुन कर पठान बहुत प्रसन्न हुआ और बोला—हुजूर सितार तो बजा लेते होंगे !

वसन्तराय ने 'हाँ' कह कर सितार उठा लिया और विहाग राग शुरू कर दिया। गाते-गाते वे इतने मस्त हो गये कि उन्हें अपनी प्रतिष्ठा, आत्माभिमान आदि का कुछ भी ध्यान न रहा। गाने के बीच-बीच में पठान 'वाह, वाह'! कह कर उन्हें और भी उत्तेजित करता जाता था।

गाना समाप्त होने पर पठान बोला—वाह जनाब, आपका गला कितना मीठा और सुरीला है! मैंने तो आज तक ऐसा सुरीला गाना नहीं सुना था !

वसन्तराय ने कहा—बात यह है कि सूनी रात होने के कारण आवाज मीठी मालूम पड़ती है। वास्तव में मेरा गला इतना सुरीला नहीं है। हाँ, मैंने अपने गले को साधा अवश्य है। यद्यपि मेरे गले की लोग अधिक तारीफ नहीं करते तो भी मैं अपने इस काम को छोड़ता नहीं। मेरे केवल दो ही सच्चे प्रशंसक हैं। यद्यपि वे छोटे हैं और उन्हें इस विषयकी परख नहीं है, किन्तु वे सच्चे हृदयसे

मेरे गाने की प्रशंसा करते हैं। बहुत दिनों से उसने मेरी मुलाकात नहीं हुई है। जब मैं उनसे कुछ दिनों तक नहीं मिलता हूँ तो मेरा मन गाने-बजाने से उचटने लगता है। आज मैं उन्हीं के पास जा रहा हूँ। उनसे मिल कर और उन्हें गाना सुना कर अपने हृदय को शान्त करूँगा। दो-चार दिन रह कर लौट आऊँगा।

वसन्तराय के नेत्र उपरोक्त बातें कहते-कहते स्नेह से चमकने लगे। वे एक दूसरी ही दुनिया में विचरण करने लगे। पठान ने मन ही मन कहा—सितार बजा कर आपने अपना एक जोश तो कुछ ठंढा कर लिया। रह गया दिलका बोझ उसे क्या मैं यहाँ हमेशा के लिये हलका कर दूँ? लेकिन नहीं, मुझे ऐसा करने की कोई जरूरत नहीं है। मैंने अपनी जिन्दगी में बहुत काफिरों को मार कर सबाब हासिल कर लिया। अब मुझे उसकी ज्यादा जरूरत नहीं। अच्छा हो, अगर मैं इसे न मार कर इससे अपना कुछ मतलब निकालूँ।

इतने ही में वसन्तराय ने उससे धीरे से कहा—जिनके बारे में मैंने तुमसे कहा है उन्हें तुम न जानते होगे? वे और कोई नहीं, मेरे पोते-पोती हैं।

इतना कह कर वसन्तराय अपने नौकरों के आने का मार्ग देखने लगे और उन्हें अभी तक लौटा न देख कुछ चिन्तित हुए। थोड़ी देर तक इसी चिन्तन में पड़े रहने के बाद फिर सितार उठा कर बजाने लगे।

वसन्तराय अपने धुन में मस्त ही थे कि एक अश्वारोही सामने आकर खड़ा हो गया और एक लम्बी साँस छोड़ कर बोला—ओह, कुछ समझ में नहीं आता इतनी रात में इस सुनसान पथ पर आप किसे गाना सुना रहे हैं, दादाजी?

उदयादित्य की आवाज सुनते ही वसन्तराय चौंक उठे।

सितार रख कर झपटकर उन्हें गले से लगा लिया और पूछा—कहो बेटा, सब कुशल तो है ?

उदयादित्य ने कहा—जी हाँ, आपके आशीर्वाद से सब कुशल है।

युवराज को बैठा कर बसन्तराय फिर दूने उत्साह से गाने लगे, किन्तु उदयादित्य ने उस ओर ध्यान न देकर बसन्तराय से बहुत ही धीरे से पूछा—दादाजी, यह कौन है और यहाँ क्यों बैठा है ?

बसन्तरायने फौरन उत्तर दिया—ये बड़े ही भले आदमी हैं। इन्हीं के कारण आज की सूनी रात आनन्द से कटी है दिल जरा भी नहीं घबराया।

उधर उदयादित्य को देखते ही पठान का दिल काँप उठा। घबरा कर इधर-उधर बगलें झाँकने लगा। कुछ समझ में नहीं आता था कि क्या करे।

उदयादित्य ने फिर बसन्तराय से पूछा—आप चट्टी में न ठहर कर यहाँ इस निर्जन स्थान में इस प्रकार क्यों ठहरे हैं ?

उत्यादित्य की बात सुन कर पठान बोल उठा—हुजूर अगर मुझे माफ करें तो एक बात कहूँ।

बसन्तराय की ओर देख कर उदयादित्य ने कहा—कहो, क्या कहना चाहते हो ?

पठान ने डरते-डरते कहा—हम महाराज प्रतापादित्य जी के राज्य में रहते और उन्हीं की रिआया हैं। उन्होंने मुझे और मेरे भाई को आज रास्ते में अपने चाचा को मार डालने का हुक्म दिया है।

बसन्तराय पठान की बात सुन कर एकदम चौंक उठे।

उदयादित्य ने पूछा—अच्छा, फिर !

पठान बोला—हुजूर, उनके हुक्म देने पर भी जब हम लोग राजी नहीं हुए तो उन्होंने हमें बहुत डराया-धमकाया। अपने

मन के खिलाफ लाचार हो कर हम लोगों को उनकी बात माननी पड़ी। वहाँसे चलनेपर रास्ते में इनसे मुलाकात हुई और मेरा भाई इनसे अपने गाँवमें डाका पड़ने की झूठी बात कह कर इनके साथ के सब सिपाहियों को अपने साथ ले गया। महाराजने मुझे इनके मारनेका हुकम तो दिया है, लेकिन मुझ से यह काम नहीं हो सकता; क्योंकि हम लोगों ने कभी भी ऐसा काम नहीं किया। अब आप जैसा हुक्म दें वैसा मैं करूँ; क्योंकि इनको अगर बिना मारे मैं यशोहर लौट जाऊँगा तो हमारे जान की खैर नहीं है। साथ ही यह काम भी मेरा किया नहीं हो सकता, जैसा कि मैं पहले ही अर्ज कर चुका हूँ। अब अगर आप हमारी जान नहीं बचाते तो हम कहीं के न रह जायँगे। हमारी जान आपके हाँथों में है।

उपरोक्त बातें कह कर पठान उदयादित्य के सामने हाथ जोड़ कर विनीत भाव से खड़ा हो गया।

पठान की बातें सुन कर वसन्तराय अवाक् हो गये। कुछ क्षण तक विचार में डूबे रहे। इसके बाद पठान से बोले-खैर, जो कुछ ईश्वर करता है, अच्छा ही करता है। मेरा एक खत लेकर तुम सीधे रायगढ़ चले जाओ। मैं वहाँ आ कर तुम्हारी नौकरी-चाकरी का इन्तजाम कर दूँगा। तुम किसी बात की फिक्र मत करो।

उदयादित्य ने वसन्तराय से कहा—दादाजी, अब आप यदि यशोहर न जायँ तो अच्छा हो।

वसन्तराय—नहीं बेटा, मैं एक बार वहाँ अवश्य जाऊँगा।

उदयादित्य ने पूछा—आप ऐसा हठ क्यों कर रहे हैं?

वसन्तराय ने शान्त भाव से कहा—तुम नहीं समझते बेटा! प्रताप आखिर तो मेरा भतीजा ही है। छोटे से अपराध हुआ ही करता है और बड़े क्षमा ही किया करते हैं। मुझे अपने जीवन की जरा भी चिन्ता नहीं है। संसार के सब सुखों का उपभोग

कर चुका और मृत्यु के दिन भी समीप ही आते जा रहे, किन्तु है एक बार मुझे उसको समझाना आवश्यक है। इसीलिए मैं उससे मिलना चाहता हूँ।

उपरोक्त बातें कहते-कहते उनकी आँखें डबडबा आइ और उधर उदयादित्य के नेत्र भी अश्रुपूर्ण हो गये। इसी समय वसन्त-राय के नौकर दौड़ते और शोर मचाते हुए वहाँ आ पहुँचे और व्यग्र भाव से पूछने लगे—महाराज कहाँ हैं?

वसन्तराय ने जोर से कहा—क्या शोर मचाते हो? इसी जगह हूँ और कहाँ चला जाऊँगा।

खाँ को देखते ही नौकर उसकी ओर झपटे, किन्तु वसन्तराय ने बीच में आ कर कहा—खबरदार! दूर रहो। खाँ को कुछ भी न कहना।

नौकरों में से एक बोला—हमलोगों को इसने बड़ा परेशान किया है। इसने—

उसकी बात काटते हुए बीच में ही दूसरा बोल उठा—ठहरो मैं सब बातें अच्छी तरह महाराज को समझा कर बता देता हूँ—महाराज, इसका साथी वह दूसरा पठान हमलोगों को यहाँ से बहुत दूर एक आम की बगिया में ले जा कर—

तीसरा बीच में ही बोल उठा—नहीं जी, वह आम की बगिया नहीं थी, वह तो जंगल था सरकार। वह हमलोगों को कोसों उसी जंगल में ले गया और घंटों तक इधर-उधर भटका कर स्वयं आँख बचा कर कहीं खिसक गया। उसे तो मैंने पहले ही समझ लिया था कि वह बदमाश है।

इसी प्रकार एक-एक कर सभी ने वही बातें कहीं जो वसन्तराय पहले ही जान चुके थे।

५

यशोहर के राजप्रसाद में महाराज प्रातापादित्य और मन्त्री बैठे हैं। अन्य कोई भी दृष्टिगोचर नहीं होता। चारों ओर निस्तब्धता छाई है। एकाएक शान्ति भङ्ग करते हुये महाराज ने मन्त्री से कहा—मन्त्री, कुछ समझ में नहीं आता, वे दोनों पठान अभी तक क्यों नहीं लौटे! अब तक तो उन्हें आ जाना चाहता था।

मन्त्री ने धीमे स्वर में कहा—कह नहीं सकता महाराज! मैं इस विषय में निर्दोष हूँ।

प्रतापादित्य ने किञ्चित रोषपूर्वक कहा—मैं नहीं समझता तुम्हारी बुद्धि में क्या हो गया है! मैं तुम्हें दोषी तो बना नहीं रहा हूँ। क्या इस बिषय में तुम कुछ विचार भी नहीं सकते कि उनके लौटने में विलम्ब होने का क्या कारण है?

मन्त्री ने कहा—महाराज! वे लोग काफी दूर गये हैं। समय अधिक लगना स्वाभाविक है।

मन्त्री के कथन से अपने विचारों को मिलते न देख कर प्रतापादित्य बोले—देखो मन्त्री, कल रात्रि में जब उदयादित्य यहाँ से गया उसी समय तुम्हें मुझसे कहना था। ऐसा न करके तुमने बड़ी भूल की है। खैर, मेरा विचार है कि श्रीपुर के जमींदार की लड़की ने ही उसे सलाह देकर बाहर भेजा है; क्योंकि पहले कभी उदयादित्य ऐसा कार्य न करता था। बोलो तुम्हारे क्या विचार हैं?"

मन्त्री ने कुछ नहीं कहा। उसे मौन देख कर प्रतापादित्य ने फिर पूछा—क्यों जी तुम बोलते क्यों नहीं? क्या तुम अपने विचार व्यक्त नहीं कर सकते?

इस बार मन्त्री बोला—आपका अनुमान ठीक हो सकता है

महाराज ! महारानी साहबा के द्वारा बहूजी की सभी बातें सुनकर आप उनके स्वभाव से परिचित होंगे और अनुमान कर सकते हैं, किन्तु मैं इस विषय से अनभिज्ञ होने के कारण कुछ नहीं कह सकता।

मन्त्री के वाक्य समाप्त करते ही द्वार खुला और एक पठान ने अन्दर प्रवेश किया। उसे देखते ही प्रतापादित्य ने उत्सुकता से पूछा—क्यों, क्या हुआ ?

पठान ने हाँफते हुए कहा—जी हाँ सरकार, उम्मीद है कि अब काम पूरा हो गया होगा।

प्रतापादित्य—क्या तुम वहाँ नहीं थे जो इस प्रकार कहते हो कि काम पूरा हो गया होगा ?

पठान ने सकपकाते हुए कहा—जी हूजूर, मैं उस वक्त वहाँ नहीं था, लेकिन मुझे पूरी तरह उम्मीद है कि काम जरूर पूरा हो गया होगा। मैं तो आपके हुक्म के मुताबिक उनके नौकरों को भुलावा देकर वहाँ से बहुत दूर हटा ले गया था और हुसेन खाँ काम पूरा करने के लिए वहीं रह गया। मुझे पूरा यकीन है कि वह आपके हुक्म को बजा लाया होगा।

प्रतापादित्य बोले—अगर वह काम न कर सका हो तो ?

पठान ने उत्तर दिया—हुजूर, पहले तो ऐसा हो नहीं सकता और यदि हुआ भी हो तो मेरी जान खिदमत में तैयार है।

प्रतापादित्य—अच्छा, तुम यहीं बैठो ? तुम्हारे भाई के आ जाने पर तुम्हें इनाम दिया जायगा। जाकर बाहर पहरेदारों के पास बैठो।

पठान बाहर चला गया। प्रतापादित्य कुछ देर तक सोचते रहे, फिर मन्त्री से बोले—देखो मन्त्री, इस बात को बहुत गुप्त रखना। किसी अन्य के कान में न पड़ने पावे।

मन्त्री ने कहा—महाराज, यदि आप रुष्ट न हों तो निवेदन करूँ। ऐसी बातें छिपी नहीं रह सकती।

प्रतापादित्य ने कहा—क्यों कैसे समझते हो कि प्रकट हो जायगी।

मन्त्री ने कहा–महाराज, मुझे इसलिए सन्देह हो रहा है कि आपने राजकुमारी के विवाह में जब बसन्तराय को नहीं बुलाया था उसी समय आपके आन्तरिक भाव लोगों पर प्रकट हो गये थे। आज आपने स्वयं उन्हें बुलवाया है। ऐसी परिस्थिति में लोग क्या अनुमान करेंगे इसे आप स्वयं समझ सकते हैं।

प्रतापादित्य ने जरा क्रोधित होकर कहा—मुझे मालूम पड़ता है कि इस बातके प्रकट होने से तुम्हें प्रसन्नता होगी तभी तुम ऐसा कहते हो। यदि न भी प्रकट हानेवाली होगी तो तुम स्वयं ही सबसे कहते फिरोगे।

मन्त्री—महाराज, मेरी तुच्छ बुद्धि में जो बात आती है उसे सेवा में निवेदन कर देता हूँ। यदि मेरी बातों से श्रीमान को कष्ट होता है तो इस दास को जिस तरह मन्त्रि-पद पर आसीन किया था उसी प्रकार पदच्युत कर सकते हैं।

मन्त्री की इस बातको सुन कर प्रतापादित्य सन्न हो गये। कुछ विचार कर फिर बोले—क्यों मन्त्र', यदि इन दोनों पठानों को समाप्त कर दिया जाय तो फिर बात फैलने का भय तो न रहेगा ?

मन्त्री—महाराज, एक हत्या के छिपाने की चेष्टा दो अन्य हत्याओं के द्वारा नहीं हो सकती। एक ही का छिपाना जब कठिन है तो तीन-तीन कैसे छिपाये जा सकते हैं।

प्रतापादित्य ने रोषपूर्ण स्वर में कहा—तो इसका अर्थ यह है कि यशोहर को छोड़कर भाग जाऊँ, लेकिन यह याद रखो कि यशोहर में राजा का प्रभुत्व है, प्रजा का नहीं। प्रजाको मेरे कार्यों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। यदि वह उसके प्रतिकूल कुछ बोलेगी तो उसे इसका उचित दण्ड भोगना पड़ेगा।

प्रतापादित्य की बात सुनकर मन्त्री मन ही मन हँसा।

प्रतापादित्य ने कुछ क्षण बाद कहा—रायगढ़ का मेरे अति-रिक्त दूसरा कोई उत्तराधिकारी नहीं है। अतः सब कृत्य समाप्त हो जाने पर एक बार वहाँ जाना आवश्यक है।

एकाएक वसन्तराय को धीरे-धीरे कमरे में प्रवेश करते देख कर प्रतापादित्य चौंक उठे। वसन्तराय की प्रेतात्मा समझ कर एक बार वे काँप कर पीछे हट गये। पर वसन्तरायने पास जा कर उनके शरीर पर हाथ फेरते हुए बड़े प्रेमपूर्ण स्वर में कहा—बेटा प्रताप, मुझ से व्यर्थ ही क्यों डरते हो? मैं तो तुम्हारा चाचा हूँ, दुश्मन नहीं। दूसरे, मैं अशक्त हो गया हूँ। तुम्हारा अहित क्यों करूँगा!

प्रतापादित्य किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहे थे। कुछ भी कहते न बना। किसी प्रकार का शिष्टाचार भी न दिखला सके। उन्हें मौन देख वसन्तराय ने फिर कहा—बेटा, बोलते क्यों नहीं? जो कुछ ईश्वर करता है अच्छा ही करता है। लज्जा या संकोच करने की कोई आवश्यकता नहीं है। चिन्ता न करो। मेरे मुँह से तुम कभी कोई बात न सुनोगे। आओ, एक बार अपने इस वृद्ध चाचा के हृदय को गले लग कर शीतल कर दो। अब मेरा जीवन अधिक दिनों तक नहीं है।

वसन्तराय की उपरोक्त बातों को सुन कर प्रतापादित्य को चेतना हुई और वे उठ कर उनके गले से लगे। इस बीच में मन्त्री कमरे से बाहर चले गये। प्रतापादित्यको प्रेमपूर्वक देख कर वसन्तराय ने फिर कहा—बेटा, अब मैं स्वयं अपने जीवन से ऊब गया हूँ, किन्तु न जाने क्यों ईश्वर मेरी सुध नहीं लेते। फिर भी मेरी आत्मा कहती है कि अब कूच का समय बहुत ही निकट आ गया है।

प्रतापादित्य कुछ न बोले। उस समय वे बड़ी ही विचित्र परिस्थिति में पड़े हुए थे।

उन्हें मौन देख कर वसन्तराय ने फिर कहा—देखो बेटा, तुम मेरी हत्या करने की चेष्टा कर के बड़ी भूल कर रहे हो। यद्यपि मेरे हृदय में यह बात शूल की तरह असहनीय हो रही है, किन्तु तुम्हारे प्रति मेरे मन में द्वेष-भाव का लेश भी नहीं है। ऐसा करने से तुम्हारा दोनों लोक बिगड़ेगा। थोड़े दिन और धैर्य धारण किये रहो। अधिक दिनों का मैं अब मेहमान नहीं हूँ। फिर व्यर्थ ही अपना यश क्यों कलंकित करते हो।

इस बार भी प्रतापादित्य ने कुछ उत्तर नहीं दिया और न पश्चात्ताप ही प्रकट किया। उनके इस भाव को देख कर वसन्तराय ने प्रसङ्ग बदलते हुए कहा—बेटा, एक बार रायगढ़ क्यों नहीं चलते! बहुत दिनों से तुम वहाँ नहीं गये हो। वहाँ अब पहले से बहुत परिवर्तन हो गया है।

इसी समय पठान वहाँ से धीरे-धीरे भागने का प्रयत्न कर रहा था। उसे भागते देख कर प्रतापादित्य को क्रोधाग्नि भड़क उठी और वे तड़प कर बोले—ख़बरदार, पठान भागने न पावे। यह कहते हुए वे बाहर निकल आये और मन्त्री से कहा—आज-कल प्रत्येक कार्य में तुम लापरवारी कर रहे हो। यह अच्छा नहीं है।

मन्त्री ने धीरे से उत्तर दिया—महाराज, इस विषय में मैं निरपराध हूँ।

प्रतापादित्य ने रोषपूर्ण स्वर में कहा—मैं इस विषय को ले कर तुम से नहीं कह रहा हूँ। सभी कार्यों में तुम्हारी असावधानी दिखलाई पड़ती है। उस दिन तुमने मेरा वह पत्र खो दिया। इस प्रकार कैसे कार्य चलेगा?

कई महीने की पुरानी बात को आज उभाड़ते देख कर मन्त्री कुछ न बोले।

प्रतापादित्य आगे कहते ही गये—इसी प्रकार अनेक बार

तुमने लापरवाही की है। खैर, मैं तुम्हें सावधान किये देता हूँ। मुझे ये बातें पसन्द नहीं हैं।

इसके बाद प्रतापादित्य पहरेदारों को कैद का दण्ड देकर महल में जा कर रानी से बोले—आजकल घर में बड़ी गड़बड़ी मची हुई हैं। उदय अपने मन का हो गया है। बिना पूछे गायब हो जाता है। ऐसा क्यों हो रहा है मैं जानना चाहता हूँ ?

रानी ने डरते हुए उत्तर दिया—महाराज, इसमें उसका कोई दोष नहीं है। यह सब बड़ी बहू के कारण हुआ है। जब से वह मेरे यहाँ आई है तब से मेरा बच्चा न जानें कैसा हो गया है। उसकी प्रकृति ही जैसे बदलती जा रही है।

प्रतापादित्य—बड़ी बहू का दोष है, केवल इतना कहने से ही काम नहीं चलेगा। दोषी के साथ कड़ा व्यवहार होना चाहिए।

प्रतापादित्य के चले जाने पर महारानी ने उदयादित्य को बुलवाया। उनके आने पर उन्हें आपने पास बैठा कर प्रेम से बोलीं—बेटा, यह तुम्हारी कैसी दशा हो रही है ? दिन पर दिन चेहरा मुर्झाया जा रहा है। तुम्हारी यह दशा देख कर मुझे बड़ा कष्ट होता है। बड़ी बहू की बातों को तुम न सुना करो। उसकी बातों में पड़ कर ही तुम ऐसे हुए जा रहे हो। वह तो छोटे कुल की लड़की है। जैसा कुल होता है वैसी ही बुद्धि भी होती है। वह तुम्हें अच्छी सलाह कहाँ से देगी। तुम्हारे अकल्याण में ही उसे प्रसन्नता होगी।

उदयादित्य से माता की बातें न सहन हुईं। उन्होंने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया। इसी समय उनकी दृष्टि सुरमा से मिली, जो वहीं खड़ी सब बातें सुन रही थी।

इतने में ही एक पुरानी दासी कहने लगी—श्रीपुर की लड़कियाँ न जानें कैसा जादू जानती हैं। मेरे कुमार के ऊपर न जानें कौन-सा टोना इसने कर दिया। बच्चे की कैसी

दशा हो गई ! यह कह कर वह अपनी आँखों को आँचल से मलमल कर लाल करने लगी। महारानी की आँखों से आँसू भी टपकने लगे। सुरमा एक बार अश्रुपूर्ण नेत्रों से कुमार के कातर मुख की ओर देख कर वहाँ से चली गई।

रात्रि में महारानी ने प्रतापादित्य को समझा दिया कि अब उदयादित्य की आखें खुल गईं। भविष्य के लिए वह सचेत हो गया। बहू की बातों पर अब वह ध्यान न देगा।

——:o:——

६

विभा अपने कमरे में उदास बैठी है। नीचे सिर किये न जानें किस चिन्ता में लीन है। एकाएक कमरे में सुरमा को प्रवेश करते देख वह चौंक पड़ी, किन्तु उधर केवल एक बार देख कर उसने अपना सिर झुका लिया। सुरमा उसके बगल में जा कर बैठ गई। विभा को इस प्रकार उदास और चिन्तामग्न देख कर उसके हृदय में बड़ा ही दुःख हुआ। उसने विभा की ठुड्ढी पकड़ कर मुहँ ऊपर उठाया और प्रेम पूर्ण शब्दों से बोली—प्यारी ननद ! आज हृदय में कौन-सा दुःख है कि तुम इतनी चिन्तित हो। अपनी चिन्ता मुझ पर क्यों नहीं प्रकट करतीं ? मुझसे यह नहीं देखा जाता।

विभा ने धीमे स्वर में कहा—भाभी ! क्या तुम मेरी चिन्ता से अनभिज्ञ हो ? सभी बातें तो तुम जानती हो।

सुरमा—समझ गई, ननदोईजी से बहुत दिनों से भेंट नहीं हुई है, इसीलिए तुम इतना उदास हो। तुम एक पत्र उनको आने के लिए लिख दो। मैं तुम्हारे भाई के द्वारा उसे उनके पास भेज देने का प्रबन्ध करा दूँगा। आशा है वे तुम्हारा पत्र पाते ही आ जायँगे।

विभा का विवाह चन्द्रद्वीप के राजा रामचन्द्र राय के साथ हुआ था। ये बातें उन्हीं के सम्बन्ध में हो रही थी।

सुरमा की बात सुन कर विभा ने सिर नीचा कर लिया और बोली—भाभी, तुम कैसी बातें कर रही हो? जिस स्थान पर मनुष्य का आदर न हो, जहाँ उसकी अवज्ञा हो उस जगह उसे न जाना चाहिये। यहाँ उनकी उपेक्षा ही अधिक सम्भव है। वे भी तो एक देश के राजा हैं। हम लोगों से वे किस बात में कम हैं? फिर क्यों वे पिता जी द्वारा अपमानित होने के लिए यहाँ आवें? वे यदि आना भी चाहें तो मैं उन्हें रोक दूँगी। यह कहते-कहते विभा का गला भर आया। आँखों से आँसू टपक पड़े। ग्लानि और क्रोध के भाव उसके चेहरे पर परिलक्षित होने लगे।

सुरमा ने विभा को गले लगा लिया और अपने अञ्चल से उसके आँसू पोंछते हुए कहा—यदि तुम पुरुष होती तो क्या कभी बिना बुलाये ससुराल न जाती।

विभा—नहीं! मैं तो कभी न जाती। तुम्हीं बताओ क्या उनका बिना बुलाये यहाँ आना उचित है? जब उनका यहां आदर नहीं तो आने से लाभ ही क्या?

विभा ने आज तक कभी इस तरह निःसंकोच भाव से अपने दिल की बात किसी से न कही थी। आज उसने आवेश में न-जानें क्या-क्या कह डाला। अब वह सोचने लगी—आज मैं इतनी निर्लज्ज कैसे हो गई? मैंने जो कुछ आवेश में कह डाला वह मुझे शोभा नहीं देता। अपनी लज्जा की सीमा का मैंने उल्लंघन कर डाला।—इसी प्रकार सोचते-सोचते उसका हृदय ग्लानि से भर गया और वह सुरमा की गोद में मुँह छिपा कर लेट गई। सुरमा उसके मस्तक पर हाथ फेरने लगी। कुछ देर के बाद विभा उठ बैठी और आँखों के आँसू पोंछ कर जरा मुस्कुराई। विभा की

इस अवस्था को देख कर सुरमा ने प्रसंग बदलते हुए कहा–विभा, सुनती हूँ, दादाजी आये हैं ? क्या यह सच है ?

विभा ने साश्चर्य कहा—क्या तुम सच कह रही हो ?

सुरमा—हाँ, मुझे जहाँ तक मालूम है यह बात सच है।

विभा ने उत्सुकता के साथ पूछा—कब आये हैं, क्या तुम्हें मालूम है ?

सुरमा—शायद आज ही प्रातःकाल आये हैं।

विभा—लेकिन अभी तक वे हम लोगों से मिलने नहीं आये ? ऐसा तो कभी न होता था।

वसन्तराय ने आ कर भी अभी तक उससे भेंट नहीं की, इस बात को सोच कर विभा के मन में कुछ दुःख हुआ। उसका मुख-मण्डल एक बार फिर उदास हो गया। इसी समय एकाएक वसन्तराय ने गाते हुए कमरे में प्रवेश किया।

वसन्तराय के गाने का मतलब यह था—आज मैं बहुत दिन के पश्चात् तुमसे मिलने आया हूँ, किन्तु मैं बहुत दिनों तक यहाँ रुकूँगा नहीं। केवल तुम्हारा प्रसन्न मुख देख कर और ओट से तुम्हारी मधुर मुस्कान का आनन्द लेकर चला जाऊँगा।

वसन्तराय को देख कर विभा को बड़ा ही हर्ष हुआ। वह हर्षातिरेक से चञ्चल हो उठी और नीचे सिर झुका कर हँसने लगी।

सुरमा ने वसन्तराय से कहा–दादाजी, विभा की मुस्कुराहट देखने के लिए आज तो आपको आड़ में नहीं जाना पड़ा ?

वसन्तराय—नहीं, तुम नहीं जानती। यह विभा का कौशल है। वह सोचती है कि यदि न हँसूँगी तो यह बूढ़ा यहाँ से टलेगा नहीं; इसलिए थोड़ा-सा हँस ही दूँ। किसी तरह यह यहाँ से जाय तो, किन्तु मैं बिना इसे अच्छी तरह जलाये यहाँ से जानेवाला नहीं।

सुरमा ने हँस दिया। फिर वसन्तराय से बोली—विभा कहती है कि क्या इतनी बार लजा लेने पर भी अभी आपकी तृप्ति नहीं हुई?

सुरमा की बात सुन कर वसन्तराय को बड़ा आनन्द आया। वह विनोद से हँसने लगे।

सुरमा की बात और वसन्तराय की विनोदपूर्ण हँसी से विभा चिढ़ कर कहने लगी—भाभी, तुम क्यों व्यर्थ ही मेरे पीछे पड़ी हो? मैंने तो तुमसे कुछ नहीं कहा। अपनी तरफ से बात बना-बना कर कहने में तुम्हें क्या आनन्द आता है?

सुरमा ने वसन्तराय से कहा—दादाजी, अब आप चले जाइये। विभा की हँसी देखने की आपकी अभिलाषा पूर्ण हो चुकी।

वसन्तराय ने हँस कर कहा—नहीं अभी मेरी दो-एक अभिलाषाएँ बाकी हैं। एक तो नये याद किये हुए गीतों को सुनाना दूसरे अपने सिर के पके बालों को विभा से चुनवाना।

विभा अब अपनी हँसी न रोक सकी। उसने कहा—दादाजी, आपके आधे सिर में तो बाल ही नहीं हैं।

विभा अधिक न बोलती थी। उसे बुलाने के लिए बहुत प्रयत्न करने पड़ते थे, किन्तु एक बार बोल देने पर फिर चुप भी जल्दी न होती थी। विभा को बोलते देख कर वसन्तराय को अपार आनन्द हुआ। उन्होंने अपने गँजे सिर पर हाँथ फेरते हुए कहा—क्या कहूँ, अब पहले का समय नहीं रहा। तुम लोगों की खुशामद करनी पड़ती है। पहले के जमाने में दस-पाँच सुंदरियाँ बाल चुनने के लिये लालायित रहा करती थीं। पके बालों के धोखे में न जाने कितने काले बाल उखाड़ डाले जाते थे?

विभा ने पूछा—आपके सिर में जब अधिक बाल थे तो क्या आप इस समय से अधिक सुन्दर थे?

वसन्तराय—जिन्होंने मुझे जिस अवस्था में देखा है वे मेरी उसी अवस्था को अधिक पसन्द करते हैं; इसलिए इसका निर्णय करना कठिन है।

विभा ने हँस कर कहा—खैर, मेरी समझ से तो यदि आपका सिर और गंजा हो जायगा तो आपकी सुन्दरता भी इस समय से कम हो जायगी।

सुरमा—दादाजी, इन बातों को जाने दीजिए, पहले विभा के लिए कोई उपाय कीजिए!

विभा ने झट वसन्तराय के पास जा कर कहा—दादाजी, जरा अपना सिर देखने दीजिए। पके बालों को चुन दूँ।

सुरमा—विभा, तुम बीच में ही क्यों कूद पड़ीं?

विभा ने फिर कहा—दादाजी, मेरी बात पर ध्यान दीजिए भाभी तो व्यर्थ की बातें करती हैं।

सुरमा—मुझे अपनी बात कह लेने दो। दादाजी आप—

सुरमा की बात बीच में ही काट कर विभा ने कहा—दादाजी यदि अब और पके बाल चुन दिये जायँ तो आपका सिर सपाट हो जायगा।

वसन्तराय—विभा, मुझे सुरमा की बात सुन लेने दे, नहीं तो मैं हिंडोल गाने लगूँगा।

विभा ने चिढ़ कर कहा—यदि हिंडोल गाओगे तो यह लो मैं जाती हूँ।—यह कह कर वह वहां से बाहर चली गई। उसे हिंडोल राग जरा भी पसन्द न था।

सुरमा ने वसन्तराय से कहा—विभा को आजकल बहुत ही अधिक मानसिक पीड़ा हो रही है।

सुरमा की बात से वसन्तराय चौंक कर बोले—अयँ, उसे क्या कष्ट है?

सुरमा—साल भर बीत जाने पर भी ननदोईजी को किसी ने नहीं बुलाया।

वसन्तराय—हाँ, यह तो तुम ठीक कहती हो।

सुरमा ने कहा—दादाजी, आप ही विचार करें कि कौन स्त्री अपने स्वामी का अपमान सहन कर सकती है। विभा बड़ी ही सुशील है। इतना बड़ा कष्ट होने पर भी वह अपने हृदय में ही रो कर रह जाती है, मुँह से एक भी शब्द नहीं निकालती। अभी आज ही मेरे पास बैठ कर रो रही थी।

वसन्तराय ने व्यग्र हो कर पूछा—ओफ! क्या तुम सच कह रही हो?

सुरमा—जी हाँ, सच कहती हूँ।

वसन्तराय—एक बार उसे मेरे पास बुलाओ। मैं उससे कुछ पूछूँगा।

सुरमा उसी समय विभा को पकड़ लाई। वसन्तराय ने विभा को अपने पास बैठा कर पूछा—विभा, तू पगली की तरह रोया क्यों करती है? तुझे अपना कष्ट मुझसे कहना चाहिए। खैर, मैं अभी प्रताप से कहता हूँ।

विभा ने गिड़गिड़ा कर कहा—दादाजी, पिताजी से आप कुछ न कहें। मैं आपके पैरों पड़ती हूँ।

वसन्तराय ने उसकी बातों पर कुछ भी ध्यान न दे कर प्रतापादित्य के पास जा कर कहा—क्यों प्रताप! तुम अपने दामाद को कभी नहीं बुलाते, क्या यह उचित है? ऐसा करने से तो तुम्हारी और उनकी दोनों की अप्रतिष्ठा है।

प्रतापादित्य ने वसन्तराय की बात का कुछ भी उत्तर न दे कर एक पत्र लिख कर रामचन्द्र को बुला भेजा। इधर वसन्तराय प्रसन्न चित्त विभा के पास लौट आये।

उनके आते ही विभा ने लज्जित हो कर कहा—क्या पिताजी से आपने सब कह दिया दादाजी ?

वसन्तराय कुछ न बोले सितार उठा कर गाने लगे।

विभा ने सितार छीन कर आग्रहपूर्वक पूछा—सच बताइये, क्या आपने पिताजी से कह दिया ?

वसन्तराय कुछ उत्तर भी न दे पाये थे कि उदयादित्य का भाई समरादित्य, जो आठ साल का था, वहाँ आ कर विभा से बोला—बहन, दादाजी से खूब बातें कर रही हो ! मैं अभी माँ से कहे देता हूँ।

वसन्तराय ने उसे झट पकड़ कर कंधे पर बिठा लिया और सितार बजा कर बहकाने लगे। वह भी थोड़ी देर में उनके वश में हो गया और सितार ले कर स्वयं बजाने का प्रयत्न करने लगा। इसी में सितार के कई तार टूट गये।

राजघराने के अधिकतर लोगोंका यह विचार था कि उदयादित्य को बिगाड़ने के वसन्तराय और सुरमा ये ही दोनों कारण हैं; इसीलिए समरादित्य ने विभा को उपरोक्त धमकी दी थी।

—:‑:—

७

सायंकाल है। चन्द्रद्वीप के राजमहल में राजा रामचन्द्रराय मखमली गद्दी पर मोटी मसनद के सहारे उठँग कर बैठे हैं। पास ही मन्त्री हरिशंकर, सेनापति और विदूषक भी यथास्थान बैठे हैं।

राजा ने विदूषक से पूछा-क्यों रमाई, कोई नई खबर ?

रमाई ने मुँह बना कर कहा—जी हुजूर, सुना है कि सेनापति जी के घर में चोर घुसा था

रमाई का मुँह बनाना देख कर राजा और मन्त्री दोनों ही हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये, लेकिन सेनापति घबरा उठे कि न जानें कौन-सी बात छेड़ कर विदूषक उनकी दिल्लगी उड़ावेगा। सेनापति उसकी दिल्लगी से बहुत डरते थे और रमाई को उन्हें बनाने में बड़ा मजा आता था।

राजा ने पूछा—तो फिर क्या हुआ ?

रमाई ने कहा—जी हुजूर, अभी यह कहता हूँ। तीन-चार दिन से चोर बराबर इनके घर में रात्रि में जाते हैं। इनकी स्त्री इन्हें बहुत जगाती है, पर ये टस-से-मस नहीं होते। सोने में कुम्भकर्ण को भी मात कर दिया है।

उसकी बात पर राजा और मन्त्री फिर हँस पड़े। उन लोगों को हँसते देख कर सेनापति ने भी बनावटी हँसी हँस दी। रमाई कहता गया—जब स्त्री ने बहुत फटकारा तब दूसरे दिन चोर को पकड़ने का दावा कर इन्होंने क्षमा माँगी। रात्रि में फिर चोर घुसा तो स्त्री ने इन्हें सजग किया, परन्तु इन्होंने यह कह कर बात टाल दी की अभी तो दीपक जल रहा है। चोर प्रकाश देख कर आप ही भाग जायगा। चोर से इन्होंने कहा—आज तो दीपक जल रहा है, तू भाग जा, किन्तु कल अँधेरा रहेगा, देखूँगा तू कैसे भागता है ?

राजा ने हँस कर कहा—फिर ?

रमाई कहने लगा सेनापति की चेतावनी पर भी चोर भयभीत न हुआ। वह दूसरे दिन फिर उसी समय घर में घुसा। आहट पा कर स्त्री ने सेनापति को जगाया। सेनापति ने कहा—तुम क्यों नहीं उठती हो ?

स्त्री ने कहा—मेरे उठने से क्या होगा ?

सेनापति झुँझला कर बोले—दीपक जलाओ। अँधेरे में कुछ दिखाई तो देता नहीं। सेनापति की बात से स्त्री को बड़ा क्रोध

आया, किन्तु सेनापति ने भी क्रोध प्रदर्शित करते हुए कहा—तुम्हीं इन सबकी जड़ हो। जब तुम्हें मालूम था कि चोर आयेगा तो तुमने पहले से ही दीपक क्यों नहीं जला रखा? जाओ दीपक जला कर मेरी बन्दूक दो—इधर ये बात ही कर रहे थे कि चोर ने अपना काम समाप्त कर कुछ दूर जाकर कहा—जनाब, एक चिलम तम्बाकू पिला दीजिए। बड़ा परिश्रम लगा है। सेनापति ने डाँट कर कहा—ठहरो, तम्बाकू पिलाता हूँ। खबरदार, मेरे समीप न आना नहीं तो इसी बन्दूक से काम तमाम कर दूँगा। फिर चोर ने तम्बाकू पीकर कहा—जरा रोशनी कर दीजिए तो मैं अपना रास्ता ढूँढ़ लूँ। अँधेरे में सेंध का रास्ता दिखाई नहीं देता। सेनापति ने फिर बिगड़ कर कहा—ठहर दूर ही रह पास न आना—यह कह कर इन्होंने दीपक जला दिया। चोर सब सामान ले कर चलता बना। उसके जाने पर स्त्री से गर्व के साथ बोले—साले को खूब छकाया। आखिर डर कर भाग ही गया।

राजा और मन्त्री रमाई की बातों पर इतने हँसे कि पेट में बल पड़ गया। सेनापति भी ऊपरी हँसी हँस कर अपनी चिढ़ छिपाने की चेष्टा करने लगे।

थोड़ी देर बाद राजा ने कहा—रमाई, तुम्हें मालूम है न? ससुराल जाऊँगा।

रमाई ने मुँह बना कर कहा—असारं खलु संसारं सारं श्वशुर मन्दिरम्। महाराज ससुराल में सभी सार पदार्थ हैं। केवल स्त्री ही असार है।

राजा ने मुस्करा कर कहा—क्या तुम्हारी अर्धाङ्गिनी—

रमाई ने हाथ जोड़ कर बीच में ही कहा—महाराज, मेरी स्त्री को मेरी अर्धाङ्गिनी न कहें। सात जन्म में भी मैं उसके अर्धाङ्ग की तुलना नहीं कर सकता। मेरे समान पाँच व्यक्ति भी उसके आधे अंग के बराबर न हो सकेंगे।

रमाई की बातों पर सभी हँस पड़े। राजा ने गम्भीर भाव से कहा—खैर, इन बातों को छोड़ो। मैं तुम्हें वहाँ अपने साथ ले चलूँगा और सेनापति को भी चलना पड़ेगा।

रमाई ने कहा—मेरी समझ से सेनापतिजी को इसमें कोई आपत्ति न होगी। यदि लड़ाई के मैदान में जाना होता तो शायद हिचक भी होती, पर वहाँ तो जलसे में सम्मिलित होना है।

राजा ने पूछा—क्यों? जलसे में जाना क्या सेनापति को बहुत पसन्द है?

रमाई ने कहा—सेनापति को चश्मा लगाना बहुत पसन्द है। इसीसे वे अच्छे-अच्छे सपने देखा करते हैं। चश्मा उतारना वे नहीं चाहते। लड़ाई में गोली लग कर चश्मा फूट जाने का डर रहता है; इसलिये वे वहाँ जाने में हिचकते हैं—क्यों सेनापतिजी, ठीक है न?

सेनापति ने सिटपिटा कर कहा—जी हाँ।

सेनापति ने महाराज से घर जाने की आज्ञा माँगी।

राजा—ठीक है जाइये, किन्तु आपको हमारे साथ यशोहर चलना होगा। यात्रा की सब तैयारी ठीक रहनी चाहिए। नौका आदि का भी प्रबन्ध करा कर शीघ्र आइएगा।

'जो आज्ञा' कह कर सेनापति और मन्त्री दोनों चले गये।

महाराज ने रमाई से कहा—रमाई, ससुराल में बड़ी दुर्दशा होती है। तुम जानते ही होगे कि उस बार वहाँ वालों ने मुझे बहुत बनाया था।

रमाई—जी हाँ, उन लोगों ने आपके पीछे दुम लगा दिया था।

रमाई की बात सुन कर राजा को हँसी तो आई, किन्तु हृदय में एक बड़ी चिन्ता उत्पन्न हो गई। रमाई को यह खबर मालूम

हो गई, इससे उनके हृदय में कुछ अशान्ति हुई। उसके द्वारा बात फैल जाने की आशंका थी।

रमाई ने मुँह बनाकर कहा—आप के एक साले साहेब ने मुझसे कहा था कि तुम्हारे महाराज को कोमबर में दुम निकल आई थी; मैं तो जानता था कि वे रामचन्द्र हैं, किन्तु वे राम-दूत निकले। इस पर मैंने उत्तर दिया कि महाराज का पहले तो दुम नहीं थी, किन्तु 'यस्मिन देशे यदाचारः' के अनुसार उन्हें आपके देश में जाकर आपके यहाँ वालों के समान ही वेष धारण करना पड़ा।

रमाई की उपरोक्त बात से महाराज बड़े ही प्रसन्न हुए। उसकी वाक्पटुता पर वे बहुत खुश हुए।

उपरोक्त घटना से राजा के हृदयमें बड़ी अशान्ति रहा करती थी। इसे वे अपनी पराजय समझते थे, अपमान समझकर उनका हृदय सर्वदा सन्तप्त रहता था। किन्तु आज रमाई के मुँहसे यह बात सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। हृदय में संतोष हुआ।

राजा—यदि इस बार तुमने विजय प्राप्त की तो तुम्हें पुरस्कार में मैं अपनी अँगूठी दूँगा।

रमाई ने सगर्व कहा—महाराज, इसकी चिंता आप क्यों करते हैं। यदि आप राज-महल के अन्दर मुझे ले जा सकें तो मैं आपको अपनी करामात दिखाऊँ।

राजा—यह कौन-सी बड़ी बात है? मैं तुम्हें महल में ले चलूँगा।

राजा को विश्वास था कि वे उसे आसानी से अन्दर ले जा सकते हैं। उनके लिए कोई कार्य असाध्य नहीं है।

राजा ने राममोहन माल को भी बुलवाया। राममोहन भीम के समान पराक्रमी था। उसने राजा को बचपन में गोद में खिलाया था। राजा उसे बहुत मानते थे। रमाई राममोहन से

बहुत डरता था और राममोहन उसे घृणा की दृष्टि से देखता था। रमाई सर्वदा उसकी दृष्टि से बचकर रहता था।

राममोहन के आने पर राजा ने उससे कहा—राममोहन, तुम्हें मेरे साथ यशोहर चलना होगा। और भी पचास आदमी मेरे साथ जायेंगे। तुम उन लोगों के प्रधान होगे।

राममोहन ने कहा—जैसी आज्ञा। क्या रमाई बाबू भी चलेंगे?

रमाई इस प्रश्न को सुनते ही सकपका गया। बिल्ली के समान उसके नेत्र नीचे की ओर झुक गये।

—।-ॐ-।—

८

आज यशोहर के राजप्रसाद में बड़ी चहल-पहल दिखाई पड़ती है। सभी राजकर्मचारी कार्यव्यस्त और व्यग्र हैं। दुलहाजी आने वाले हैं; इसलिए नाना प्रकार की तैयारियाँ हो रहीं हैं। तरह-तरहके पकवानों की सुगन्धि आ रही है। यद्यपि चन्द्रद्वीप का राजवंश यशोहर के आगे बहुत ही लघु है, तथापि दामाद के आगमन की प्रतीक्षा में महारानीके नेत्र आकुल हैं। दामाद चाहे अपने से स्थिति में न्यून ही क्यों न हो, किन्तु उसका पद इतना बड़ा होता है जिसके आगे उन न्यूनता की कुछ भी गणना नहीं होती। महारानी आज प्रातःकाल से ही विभा का शृङ्गार कर रही हैं। विभा बड़ी अड़चन में पड़ गई है। उसकी और वृद्धा माताकी शृङ्गार-रुचि में भेद था। किन्तु रुचि-भेद से क्या होता है। माता पुत्री की भलाई का मार्ग अच्छी तरह जानती थीं; इसलिए वह विभा की आनाकानी पर जरा भी ध्यान न देकर अपनी ही धुन में लगी थीं। माता ने जो चूड़ियाँ पहनाईं, नाक में नथ पहना दिया, पुराने ढंग के जो आभूषणों से उसे अलंकृत किया, ये सब

उसे जरा भी पसन्द न थे; किन्तु उसने सब सहन कर लिया। केवल माता की केश-पाटी बाँधनेकी रीति उससे सह्य न हुई और उसने सुरमा के पास जाकर उससे अपने रुचि के अनुकूल चोटी बँधवाई। रानी ने उसके नये बँधे बालों को देखा और साथ ही यह धारणा हुई कि केवल बाल बाँधने के एक ही दोष से उसकी सारी शोभा नष्ट हो गई। उन्हें विश्वास हो गया कि सुरमाने डाह के मारे उसके बालों को बिगाड़ कर बाँध दिया है। अपनी इस धारणा को उन्होंने विभा पर भी प्रकट कर दिया और बड़ी देर तक बड़बड़ाती भी रहीं। अन्त में उन्होंने उसके बालों को खोल-कर फिर पहले की ही तरह बाँध दिया। माता की इस जिद और अपनी वेष-भूषा से विभा के हृदय में बड़ी बेचैनी हुई। उसके सभी उत्साह मिट्टी में मिलने लगे। उसके मुख पर आन्तरिक उत्साह और उल्लास फूटा पड़ता था, किन्तु अपने शृङ्गारको देख कर उसे मालूम होता था, मानों सभी पदार्थ उसके ऊपर हँस रहे हैं। उदयादित्य ने महल में आकर विभा का प्रसन्न मुख देखा और उससे उनके हृदय में जो आनन्द हुआ वह अवर्णनीय है। आनन्द के उसी झोंक में वे सुरमा के समीप गये और उसे अंक में कसकर उसका मुँह चूम लिया। आनन्दातिरेक को वे किसी भाँति छिपा न सके।

सुरमा ने चकित होकर कहा—यह क्या ?

उदयादित्य—कुछ तो नहीं।

इसी समय वसन्तराय विभा का हाँथ पकड़कर खींचते हुए उसे घर में ले आये और बोले—लो भाई, तुम और सुरमा एक बार अपनी विभा का मुख तो देख लो!

इधर प्रतापादित्य गम्भीर बने थे। वे जमाता को बहुत सम्मान न देना चाहते थे. इसी कारण स्वागत-सत्कार का भी विशेष आयोजन न हो पाया।

इस उदासीनता को देखकर रामचन्द्र राय को बड़ी ग्लानि हुई। उनकी धारणा हुई कि जान-बूझकर ऐसी उपेक्षा की गई है पहले। जब वे आये थे तो उनकी अगवानी के लिए कई मील आगे से लोग तैयार थे, किन्तु इस बार राज-भवन के समीप केवल मंत्रीजी आये। क्या और लोग उनके साथ नहीं आ सकते थे? या आदमियों का यशोहर में अभाव हो गया? राजा को लाने के लिए जो हाथी आया वह भी बहुत छोटा था। इस पर रमाई ने दीवानजी की चुटकी लेते हुए कहा—क्या यह आपका भाई है? दीवान बहुत अधिक स्थूलकाय थे, इसी से रमाई ने यह व्यंग छोड़ा था।

दीवान ने आश्चर्य से उत्तर दिया—जी नहीं, वह हाथी है!

रामचन्द्र राय ने क्षुब्ध होकर कहा—क्या राज्य के सब बड़े हाथी मर गये?

दीवान ने कहा—जी नहीं, राजकाय कार्य से सभी बड़े हाथी बाहर भेज दिये गये हैं। इस समय एक भी बड़ा हाथी यहाँ मौजूद नहीं है।

रामचन्द्र को विश्वास हो गया कि उनका अपमान करने की ही इच्छा से सब हाथी दूर भेज दिये हैं, नहीं तो उन्हें भेजने का दूसरा कारण ही क्या हो सकता है।

राजा रामचन्द्रराय के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। वे आप ही आप बोल उठे—प्रतापादित्य मुझसे किस बात में बड़े हैं?

रमाई फौरन बोल उठा—अवस्था में और पद में; अन्य किसी भी बात में नहीं। आपने उनकी कन्या को ब्याहा है इसीसे—

राममोहन माल वहीं उपस्थित था। उससे रमाईकी बात सहन न हो सकी। उसने रमाई को डाँटकर कहा—रमाई तुम बहुत बढ़-बढ़कर बातें करते जा रहे हो, महाराज प्रतापादित्य की कन्या

यानी हमारी स्वामिनी के सम्बन्ध में यदि तुमने कुछ भी अनुचित कहा तो उसका दण्ड तुम्हें तत्काल भगतना पड़ेगा।

राममोहन की वक्र दृष्टि को देखकर रमाई ने विभा का प्रसंग बदलकर प्रतापादित्य के सम्बन्ध में कहा—मैंने बहुतेरे आदित्य देखे हैं। महाराज भी इसे अच्छी तरह जानते हैं। महाराज रामचन्द्र राय का सेवक आदित्य को भी बिल्ली के समान बगल में दबाकर रख सकता है।

राजा ने मुँह फेरकर हँस दिया। रमाई की बातों से राममोहन का क्रोध और भी उबल पड़ा। उसने महाराज से हाँथ जोड़कर कहा—महाराज यह व्यक्ति आपके ससुर के सम्बन्ध में ऐसी अनुचित बातें कहे, इसे मैं सहन नहीं कर सकता। केवल आप के संकोच से मैं मौन हूं, नहीं तो अभी इस चापलूस कुत्ते का मुँह तोड़ देता।

राजा ने राममोहन को शान्त करते हुये कहा—जरा रुक जाओ।

राममोहन वहाँ से टल गया।

रामचन्द्र राय के हृदय में उस दिन बहुत उथल-पुथल का साम्राज्य रहा। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि प्रतापादित्य ने मेरा अपमान करने के लिए ही यह आयोजन किया है। उन्होंने स्थिर किया कि प्रतापादित्य को हम दिखा देंगे कि हम भी कोई ऐसे-वैसे नहीं हैं।

प्रतापादित्य कमरे में मन्त्री के साथ बैठे बातें कर रहे थे। उसी समय रामचन्द्र राय ने कमरे में प्रवेश किया और धीरे-धीरे उनके पास जाकर सिर झुकाकर प्रणाम किया।

प्रतापादित्य ने साधारण रीति से पूछा—आओ, अच्छे तो हो?

रामचन्द्र—जी हाँ, सब कुशल है।

प्रतापादित्य मन्त्री के हाँथ से एक कागज लेकर देखने लगे।

कुछ देर के पश्चात् उधर से दृष्टि फेरकर रामचन्द्र राय से पूछा—इस साल तो तुम्हारे यहाँ बाढ़ नहीं आई ?

रामचन्द्र—जी नहीं, केवल कुआर के महीने में थोड़ा जल बढ़ गया था। कोई विशेष—

प्रतापादित्य ने बीच में ही मन्त्री से कहा—देखो दीवान, इस पत्र की एक नकल अवश्य रख लेना। यह कह कर वे फिर उस कागज को पढ़ने लगे। पढ़ना समाप्त कर रामचन्द्र राय से बोले—जाओ, अन्दर हो आओ।

रामचन्द्र धीरे-धीरे उठ खड़े हुए। 'प्रतापादित्य हमसे किसी बात में बड़े नहीं हैं' यह सोचते हुए वे अन्दर की ओर चले।

६

राजप्रसाद के अन्तःपुर में राममोहन माल जब गया, उस समय उसने सर्वप्रथम विभा से भेंट की। उसे आदर पूर्वक प्रणाम कर के राममोहन ने कहा—माँ, आपका यह पुत्र आपका आशीर्वाद लेने और दर्शन करने आया है।—राममोहन को देख कर विभा का हृदय बड़ा ही प्रसन्न हुआ। उसे विभा बहुत चाहती थी और वह भी कभी-कभी यशोहर आकर विभा से मिल जाया करता था। राममोहन के सामने विभा साधारण रीति से रहती थी। उस से लज्जा न करती थी। राममोहन जब विभा को 'माँ' कह कर सम्बोधित करता था तो विभा को अपार आनन्द का अनुभव होता था। विभा ने सस्नेह उससे पूछा—इतने दिनों से तुम क्यों नहीं आये ?

राममोहन—देखो माँ, पुत्र चाहे कुपुत्र हो जाय किंतु माता कभी कुमाता नहीं होती। तुमने भी तो मेरी सुधि नहीं ली। मैंने

भी सोचा कि जब तक माँ मुझे नहीं बुलावेंगी तब तक मैं नहीं जाऊँगा। पर इतने दिन बीतने पर भी आपने मेरा स्मरण नहीं किया।

विभा राममोहन को कुछ भी उत्तर न दे सकी। यद्यपि राममोहन को न बुला सकने का कारण वह उसे बता देना चाहती थी, किन्तु न जानें क्यों वह कुछ बोल न सकी।

विभा को चिन्ताकुल देखकर राममोहन ने कहा—आप किस बात की चिन्ता करती हैं, माँ? समयाभाव के कारण ही मैं दर्शनार्थ न आ सका, और कोई कारण नहीं है!

विभा ने प्रसन्न होकर उससे बैठने को कहा और उसके देश का हाल-चाल पूछा।

राममोहन ने चन्द्रद्वीप का हाल कहना शुरू किया। वहाँ के वर्णन को सुन-सुनकर विभा के हृदय में कैसे-कैसे भावों का उदय हो रहा था, इसे दूसरा कोई कैसे समझ सकता है। गत वर्ष के बाढ़ में राममोहन को घर बह जाने के कारण जो-जो कष्ट सहन करने पड़े थे उनका हाल सुनकर विभा का कोमल हृदय काँप उठा।

चन्द्रद्वीप का वर्णन समाप्त होने पर राममोहन ने विभा को शंख की चूड़िया देते हुए कहा—माँ, तुम्हारे लिए मैं ये चूड़ियाँ लाया हूँ। इसे पहनकर मेरी अभिलाषा पूर्ण कर दो।

विभा ने हँसकर अपने हाँथों की सोने की चूड़िया निकाल कर उन चूड़ियों को पहन लिया और प्रसन्नता पूर्वक माँ को दिखाने गई!

रानी इस बात से नाराज नहीं हुई, बल्कि राममोहन के आगमन का समाचार सुनकर प्रसन्न हुई। रानी ने राममोहन को बुलाकर हाल-चाल पूछा और अपने सामने बैठाकर भोजन कराया। उसके भोजन कर चुकने के बाद रानी ने कहा—मोहन, उस दफा जो गीत तुमने गाया था उसे एक बार फिर तो सुना दो।

राममोहन विभा की ओर देखकर गाने लगा। गाना इतना प्रभावोत्पादक था कि तीनों के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये।

सायंकाल होते ही पास-पड़ोस की स्त्रियाँ दामाद को देखने के लिए महल में इकट्ठी होने लगीं। इधर विभा के हृदय की विचित्र दशा हो रही थी। आनन्द, लज्जा और आशंका तीनों ने ही उसे घेर रक्खा था। न जाने क्या होगा, इसे सोचकर उसका हृदय बार-बार काँप उठता था।

जामाता रामचन्द्र राय अन्तःपुर में झुण्ड की झुण्ड स्त्रियों से घिरे बैठे हैं। सुन्दरियों के कोकिल-कंठ से तरह-तरह के परिहास निकल रहे थे। कुछ नव-युवतियाँ उन्हें उँगली से खोदतीं तो कुछ कोमल करों से उनके शरीर पर मृदु आघात करती थीं। रामचन्द्र राय इस व्यवहार से एकदम घबरा उठे। उन्हें घबराया देखकर एक अधेड़ स्त्री ने उनका पक्ष ग्रहणकर अन्य स्त्रियों पर वाक्-बाण छोड़ना शुरू किया और खूब जली-कटी सुनाया। उसके इस व्यवहार से सभी स्त्रियाँ रुष्ट होकर अपने-अपने घर चली गईं। रामचन्द्र राय की जान बची।

इसके बाद अधेड़ स्त्री वहाँ से उठकर रानी के पास गई जो राममोहन को खिला रही थीं। उसने जाते ही रानी से कहा—"यह राक्षसों को पैदा करने वाली है।" राममोहन उसकी बात से चौंक पड़ा। उसे एक बार भली-भाँति देखकर उसने भोजन छोड़ दिया और झटककर उस स्त्री का हाँथ पकड़ लिया। "बामन, मैं तुझे पहचान गया" यह कहकर उसने उसके सिर के कपड़े को खींच लिया। कपड़ा हटते ही रमाई अपने असली रूप में दिखाई देने लगा। राममोहन मारे क्रोध के काँप रहा था। उसने रमाई को दोनों हाथों से ऊपर उठाकर कहा—"रमाई, आज मेरे हाथ से तेरी मृत्यु होगी।" उसे ऐसा करते देखकर रानी घबराकर उससे बोलीं—मोहन, यह तुम क्या कर रहे हो?

रमाई मारे भय के चिल्ला उठा। चारो ओर से लोग दौड़ पड़े। राममोहन ने उसे पृथ्वी पर पटककर कहा— नीच, तेरी यहीं आकर मरने की इच्छा थी ?

रमाई ने काँपते हुए कहा—मेरा कोइ दोष नहीं है। महाराज की यही आज्ञा थी।

राममोहन ने गर्जकर कहा—नमकहराम, फिर झूठ बोलता है ? यदि अब कभी ऐसी बात सुनूँगा तो तेरा मुँह तोड़ दूंगा।—यह कहकर उसने उसका गला पकड़कर दबाया।

रमाई चिल्लाने लगा। तब राममोहन उसके नाटे शरीर को चादर में लपेटकर झुलाता हुआ रनिवास के बाहर निकल गया।

कुछ ही क्षण में यह समाचार बिजली की तरह सर्वत्र फैल गया। राजा के साले ने प्रतापादित्य को यह खबर सुनाया। साथ ही यह भी कहा कि रमाई ने अन्य स्त्रियों के साथ ही साथ रानी से भी मजाक किया है।

उपरोक्त बात सुनते ही प्रतापादित्य का मुख क्रोध से रक्त हो गया। उत्तेजित होकर वे पलंग पर उठ बैठा और प्रहरी को पुकारकर लछमन सरदार को बुलाने का आदेश दिया। लछमन (डोम) के आने पर उन्होंने उसे आज्ञा दी—आज रात्रि में तुझे रामचन्द्र राय का कटा सिर मेरे सामने लाना होगा।

लछमनने सलाम करके कहा—जैसी आज्ञा।

प्रतापादित्य की इस आज्ञा से उसका साला घबड़ा गया। उसने फौरन पैरों पर गिरकर कहा—महाराज, बड़ा अनर्थ हो जायगा। विभा की ओर ध्यान दीजिए।

प्रतापादित्य ने फिर गर्जकर कहा—मैं कुछ नहीं सुनना चाहता। मेरी आज्ञा पूर्ण होनी चाहिये।

साले ने उसी प्रकार व्याकुल कण्ठ से कहा—महाराज, वे थके हुए महल में सोये हैं। ऐसी आज्ञा न दीजिए। क्षमा कीजिए।

प्रतापादित्य ने जरा सोच कर कहा—देखो लछमन, कल प्रातः-काल जब रामचन्द्र महल के बाहर निकलें उसी समय तुम निडर होकर उन्हें समाप्त कर देना।

उनके साले को ऐसी आशा न थी कि इसका इतना भयंकर परिणाम हो जायगा। वह उसी समय वहाँ से घबराया हुआ विभा के कमरे की ओर गया।

जिस समय उपरोक्त घटना हुई, आधी रात का समय हो चुका था। दूर से नौबत की मधुर ध्वनि आ रही थी। शुभ्र चाँदनी विभा के शयनागार के झरोखों से अन्दर प्रवेश कर दुग्धफेन के समान उज्वल शय्या की शोभा को द्विगुणित कर रही थी। रामचन्द्र राय घोर निद्रा में निमग्न थे। विभा एक ओर गालों पर हाथ रक्खे चिन्ता-मग्न बैठी थी। चाँदनी की शोभा को देखकर हृदय व्यथित हो उठा था। हृदय की अन्तर्हित आशा पूर्ण न हुई। जिसकी प्रतीक्षा में उसने इतने दिन बिता दिये, आज उसके समीप होने पर वह उससे दो बातें करने के लिये तरस रही है। उसके हृदय की वेदना को दूसरा कौन समझ सकता है।

"प्रतापादित्यने मेरा अपमान किया। मैं उससे इसका बदला किस तरह लूँ?" यही सोचते-सोचते रामचन्द्र राय सो गये थे। विभा से उन्होने एक भी बात न की। वह विभा को दिखा देना चाहते थे की तुम प्रतापादित्य की कन्या और यशोहर की राज-कुमारी हो; किन्तु चन्द्रद्वीप के राजा रामचन्द्र राय के आगे तुम्हारा कुछ भी मूल्य नहीं है। उनके हृदय में ये ही भाव उठ रहे थे और इसी कारण वे बिना कुछ बोले सगर्व सो गये। विभा चुपचाप बैठी कभी स्वामी के मुख की ओर और कभी चाँदनी की ओर देखती थी। उसका हृदय बार-बार काँप उठता। इसी समय एकाएक रामचन्द्र राय ने करवट बदलकर

आँखें खोल दीं। इतनी देर की निद्रा के बाद उनके हृदय के भाव बदल गये थे। चित्त स्थिर तथा शान्त हो चुका था। नेत्र खोलते ही सामने विभा का कोमल अश्रुपूर्ण विषादयुक्त मुखमण्डल दिखाई दिया। विभा की इस दशा को देखते ही उनके हृदय में दया उमड़ आई। उन्होंने प्रेम से विभा का हाथ पकड़कर कहा—अरे, तुम रो क्यों रही हो ?

विभा का सारा शरीर काँप उठा। वह कुछ बोल न सकी। वह सङ्कोच से सिमटकर पलंग पर लुढ़क गई। रामचन्द्र राय ने उठकर विभा के सिर को अपनी गोद में रखकर उसकी आँखों के आसू पोंछ दिये। वे विभा से कुछ कहना ही चाहते थे कि बाहर से किसी ने द्वार पर धक्का दिया। रामचन्द्र राय ने चौंककर पूछा—कौन है? बाहर से आवाज आई—जल्दी द्वार खोलो। बहुत जरूरी काम है!

—:o:—

१०

रामचन्द्र राय ने उठकर किवाड़ खोला। राजा के साले रमापति को सामने देखकर एक बार वे चकित हुए, फिर पूछा—कहिए, क्या बात है ?

रमापति ने घबराई हुई आवाज में कहा—राय जी, तुम अभी यहाँ से भाग जाओ, एक क्षण का भी विलम्ब न करो।

रमापति की बात सुनकर रायचन्द्र राय का शरीर काँप गया। उन्होंने लड़खड़ाती हुई आवाज में पूछा—क्यों ?

रमापति—इतना समय नहीं है। पहले जो मैं कहता हूँ, वह करो और फौरन यहाँ से चल दो।

विभा भी पलंग से उतरकर वहाँ आई। उसने धीरे से पूछा—क्या हुआ मामाजी ?

रमापति—कुछ नहीं, तुम सुनकर क्या करोगी ?

विभा के हृदय में शंका उत्पन्न हुई। उसने फिर आग्रह-पूर्वक पूछा—क्यों मामा, ऐसी कौन-सी बात है जिसे मैं नहीं सुन सकती ?

रमापति ने विभा की बातों पर ध्यान न दिया। उन्होंने रामचन्द्र राय से कहा—व्यर्थ समय क्यों बर्बाद करते हो ? छिप कर भागने की चेष्टा करो।

रमापति की बातों से विभा के हृदय में अशुभ की आशंका होने लगी। उसने रमापति के पैरों पर गिर कर कहा—मामा, तुम्हें मेरी सौगन्ध है। शीघ्र बतलाओ, क्या बात हुई ?

रमापति ने विभा को शान्त करते हुए कहा—शोर न करो, शान्त रहो; मैं सब बतलाता हूँ।

रमापति के सब बात बतला देने पर विभा के मुँह से एक चीख निकल पड़ी। वह फूट कर जोर से रोना ही चाहती थी कि रमापति ने उसका मुँह बन्द करते हुए कहा—देख विभा, अनर्थ न कर। सर्वनाश हो जायगा। विभा कलेजा थामकर वहीं बैठ गई।

रामचन्द्र राय ने अधीर होकर कहा—मेरी बुद्धि तो कुछ काम नहीं देती। भागने का मार्ग भी मुझे नहीं मालूम। अब आप ही सहायता कीजिए।

रमापति—क्या बताऊँ, प्रहरी आज चारो ओर सतर्क भाव से पहरा दे रहे हैं। फिर भी मैं जाता हूँ, यदि कोई मार्ग मिला तो तुरन्त आकर कहूँगा। यह कह कर रमापति जाने लगे, किन्तु विभा ने उनका मार्ग रोक कर कहा—मामा जी, आप हमें छोड़ कर कहीं न जाइए। आप चले जायँगे तो हमें किस का बल रहेगा ?

रमापति ने विभा को समझाते हुए कहा—विभा, तुम पागल न बनो। मैं यदि यहाँ बैठूँगा तो बाहर की खबर कौन लेगा ?

यहाँ तुम्हारे पास बैठकर कुछ भी भला न कर सकूँगा। घबराओ नहीं, मैं अभी आता हूँ।

विभा काँपते कंठ से बोली—थोड़ी देर रुक जाओ, मामा। मैं अभी भैया से मिलकर आती हूँ।—यह कहकर वह उदयादित्य के कमरे की ओर गई।

उस समय चन्द्रमा अस्त होने वाला था। धीरे धीरे अन्धकार फैल रहा था। सभी कमरों के द्वार बन्द थे। लोग प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न थे। कहीं से किसी भी प्रकार का शब्द सुनाई नहीं पड़ता था। धीरे-धीरे थोड़ी चाँदनी जो इधर-उधर बची हुई है, लुप्त होती जा रही है। ज्योत्स्ना ज्यों-ज्यों गायब हो रही था त्यों-त्यों रामचन्द्र राय का हृदय चञ्चल होता जाता था। वे सोचने लगे कि न जाने किधर मेरा प्राण घातक इस घोर अन्धकार में छिपा होगा। क्या मालूम मेरे आस-पास ही कहीं वह छिपा बैठा हो, घात पाते ही वह मेरे ऊपर टूट पड़े? न जानें किधर से वह कब आक्रमण कर बैठे? इसी तरह नाना भाँति की कल्पनाएँ उनके हृदय को उद्वेलित करने लगीं। शरीर से पसीना छूटने लगा। एक बार रमापति के ही ऊपर उन्हें शंका हुई। वे खसककर दूर हट गये एक एक कमरे का दीपक बुझने से उनके हृदय की यह धारणा की कोई यहीं छिपा बैठा है और भी दृढ़ हो गई। डर कर फिर रमापति के पास खिसक गये और कम्पित स्वर में पुकारा—मामा! रमापति ने कहा—क्या है? रामचन्द्र राय का रमापति पर पूरा विश्वास न था; इस लिए उन्होंने सोचा कि यदि इस समय विभा उनके पास होती तो अधिक अच्छा होता।

विभा उदयादित्य के पास पहुँचते ही फूट-फूट कर रोने लगी और रोते ही रोते बेसुध होकर गिर पड़ी। सुरमा ने उसे उठा कर होश में लाने का प्रयत्न किया और पूछा—क्या बात है? इतनी अधीर क्यों हो ननद? विभा उससे लिपट गई। उदयादित्य ने

स्नेह पूर्वक उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए पूछा—विभा, क्या बात है? विभा ने रो कर कहा—मेरे साथ चलो, मामा से तुम्हें सब हाल मालूम हो जायगा!

तीनों फौरन विभा के कमरे की ओर चले। वहाँ पहुंचते ही उदयादित्य ने रमापति से पूछा—मामा क्या बात है? रमापति ने सब बातें कह सुनाई। उदयादित्य ने चकित भाव से कहा—यहाँ तक हो गया! खैर, मैं भी अभी पिताजी के पास जाता हूँ। मैं कभी भी उन्हें ऐसा अनर्थ न करने दूंगा!

सुरमा ने कहा—क्या आपके कहने का उनके ऊपर प्रभाव पड़ेगा? मेरी समझ से दादाजी को उनके पास भेजिए। उनके जाने से कुछ अधिक उपकार होने की सम्भावना है।

युवराज ने सुरमा की बात स्वीकार कर ली। बसन्तराय उस समय सो रहे थे। उदयादित्य ने जब उन्हें जगाया तो उन्होंने सोचा, शायद सबेरा हो गया। वे फौरन उठ बैठे और सितार की ओर हाथ बढ़ाया।

उदयादित्य ने कहा—दादाजी, हम लोगों के उपर बड़ी भारी विपत्ति आ पड़ी है।

बसन्तराय एक दम घबरा उठे। उन्होंने चकित होकर पूछा—कैसी विपत्ति आई है फौरन कहो?

उदयादित्य ने सब हाल कह सुनाया। बसन्तराय ने सब सुनकर कहा—नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। यह असम्भव है।

उदयादित्य ने कहा—आप सच मानिए, उपेक्षा न कीजिए। समय नहीं। एक बार पिता जी के पास जाइए।

बसन्तराय धीरे-धीरे प्रतापादित्य के कमरे की ओर चले। जाते-जाते भी उन्होंने कई बार कहा—क्या ऐसा भी कभी हो सकता है? क्या कहीं ऐसा अनर्थ हुआ है?

प्रतापादित्य के हृदय में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प हो रहे थे। कभी सोचते लछमन सरदार को बुला कर अपनी आज्ञा लौटा लूँ। किन्तु यह विचार फौरन हृदय से दूर हो जाता और आप ही आप कहने लगते यदि आज एकाएक रामचन्द्र राय की मृत्यु हो जाय अथवा वह जान-बूझ कर अग्नि में कूद पड़े तब भी तो विभा विधवा हो जायगी। तो फिर रामचन्द्र राय तो अपनी इच्छा से सब समझते बूझते हुए मेरी क्रोधाग्नि में कूदा है, उसका फल उसे अवश्य ही भोगना पड़ेगा और साथ ही विभा को भी वैधव्य-यातना सहनी ही पड़ेगी। इस में मेरा क्या दोष? ठीक इसी समय वसन्तराय ने व्यग्रता से कमरे में प्रवेश कर के प्रतापादित्य के दोनों हाथों को पकड़ कर कहा प्रताप, यह कैसी बात मैं सुन रहा हूँ?

प्रतापादित्य का क्रोध भड़क उठा बोले—क्या सुना है?

वसन्तराय-रामचन्द्र अभी नादान ही तो है! उसे अभी भले-बुरे की पहचान ही कितनी है? क्या वह तुम्हारे क्रोधका पात्र है?

प्रतापादित्यने उसी भावसे कहा-क्या आप उसे नादान समझते हैं? वह तो बुड्ढों के कान काटता है। अग्नि में हाथ डालने से हाथ जल जायगा, क्या उसे इतना ज्ञात नहीं है? एक उजड्ड, मूर्ख, भिखमंगे ब्राह्मण को स्त्री के वेष में अन्तःपुरी में ले जाकर रानी के साथ परिहास करने की बुद्धि उसमें है और उसका परिणाम सोचने की बुद्धि उसमें नहीं है। खैर, अब वह मस्तक ही उसके धड़ पर न रहेगा जिसमें ऐसी बुद्धि उत्पन्न होती है!

उपरोक्त बात बोलते-बोलते प्रतापादित्य का खून और भी खौल उठा। वे और भी दृढ़प्रतिज्ञ होने लगे।

वसन्तराय ने समझाते हुए कहा—वह अभी बालक है; भले बुरे का अभी उसे कुछ ज्ञान नहीं है। उसकी बातों पर तुम्हें ध्यान न देना चाहिए।

प्रतापादित्य से अब सहन न हो सका। उन्होंने उत्तेजित होकर कहा—देखो चाचा जी, यशोहर के राजवंश का मान अपमान तुम नहीं समझ सकते। यदि तुम्हें इतना ही ज्ञान होता तो तुम मुगल बादशाह की पद-धूलि को मस्तक पर चढ़ाकर उसकी अधीनता स्वीकार न करते, उसके कृपापात्र बनकर तुम सिर उठाकर न घूमते। क्या कहूँ, मैं तो इस मस्तक को धूल में लोटता देखना चाहता था, किन्तु दैववशात् मेरी इच्छा में बाधा पड़ गई। आज रायवंश का कितना बड़ा अपमान किया गया है और तुम उसी अपमानकर्त्ता के लिए क्षमा माँग रहे हो?

वसन्तराय—प्रताप, मैं अच्छी तरह समझता हूँ कि तुम्हारे हाथ से एक बार उठाया हुआ अस्त्र बिना किसी के ऊपर गिरे नहीं रहेगा। पहले मैं उसका लक्ष्य था, किन्तु मेरे बच जाने पर अब दूसरा लक्ष्य बना है। यदि तुम्हारी क्रोधाग्नि में एक आहुति का पड़ना आवश्यक है तो मैं उसके लिए प्रस्तुत हूँ। मेरा सिर तैयार है; अपने खंजर से इसे उतार कर अपनी ज्वाला शान्त करो। किन्तु विभा का भविष्य अन्धकारमय न बनाओ। वह अभी दुध मुँही बच्ची है। उसके नेत्रों से निकली अश्रुधारा को हम····

वसन्तराय आगे न बोल सके। उनका कण्ठ रुद्ध हो गया। बालकों की भाँति वे फूटकर रो उठे। कुछ क्षण के बाद भर्राई हुई आवाज में बोले—प्रताप, मुझे अभी मार डालो। मुझे जीने की जरा भी लालसा नहीं है। उस बच्ची की आँखों के आँसू देखने के पहले ही मैं अपने जीवन का अन्त चाहता हूँ!

वसन्तराय की बात समाप्त होने पर प्रतापादित्य धीरे-धीरे बाहर चले गये। उन्होंने समझ लिया कि बात खुल गई। नीचे जाकर प्रहरियों को आज्ञा दी—राजभवन के पास वाली नहर का मार्ग अभी बड़े-बड़े लट्ठों के द्वारा बन्द कर दिया जाय

और बिना मेरी आज्ञा के कोई भी आज रात्रि में महल से बाहर न जाने पावे। महल के पास वाली नहर में ही रामचन्द्र राय की नौका थी।

११

प्रतापादित्य के पास से लौट कर वसन्तराय विभा के पास आये। उन्हें देखते ही विभा फूट-फूट कर रोने लगी। वसन्तराय के नेत्रों से आँसू निकल पड़े। उन्होंने उदय दित्य से कहा—बेटा, तुम्हीं कोई उपाय करो। रामचन्द्र राय बहुत अधीर हो रहे थे। उदयादित्य ने अपनी तलवार हाथ में लेकर कहा—आओ, सब लोग मेरे साथ-साथ आओ। विभा, तुम यहीं रहो। रामचन्द्र राय बोले—नहीं, विभा को भी साथ ही आने दो।

उस शून्य रात्रि में सभी दबे पैर आगे बढ़े। रामचन्द्र राय का हृदय भय से काँप रहा था। वे रह-रह कर चौंक उठते थे। उदयादित्यने देखा; महल से बाहर जाने का द्वार बन्द है। विभा ने कहा—भैया, शायद सुरंग का द्वार खुला हो। उसी तरफ से चलो। सब लोग उसी ओर चले। उसी अंधकार में सीढ़ियों पर पैर रखते हुए लोग नीचे उतरने लगे; किन्तु नीचे जाकर देखा कि वह द्वार भी बन्द है। फिर धीरे-धीरे लोग ऊपर लौट आये। बाहर जाने के सभी मार्गों पर लोग गये, पर सभी द्वार बाहर से बन्द मिले।

जब विभा ने देखा कि बाहर जाने का कोई भी मार्ग नहीं है तब उसने हृदय में साहस भर कर स्वामी का हाथ पकड़ लिया और उन्हें लेकर अपने शयन-कक्ष की ओर गई। वहाँ जाकर उसने रामचन्द्र राय को कमरे के अन्दर कर दिया और स्वयं द्वार

पर खड़ी हो कर कहने लगी—देखूँगी, किस में इतना साहस है जो तुम्हें यहाँ से ले जायगा। तुम जहाँ जाओगे, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। मुझे कोई नहीं रोक सकता!

उदयादित्य ने भी द्वार के पास जाकर कहा—मेरे जीते जी कोई भी इस द्वार के अन्दर पैर नहीं रख सकता।—सुरमा भी स्वामी के पास ही खड़ी थी। वृद्ध वसन्तराय भी सब के आगे आकर खड़े हो गये। रमापति धीरे-धीरे चले गये। इतना होने पर भी रामचन्द्रराय को सन्तोष न हुआ। वे प्रतापादित्य के उग्र स्वभाव से परिचित थे। वे जानते थे कि प्रतापादित्य के लिए कुछ भी कठिन नहीं है। विभा और उदयादित्य बीच में पड़कर उनकी रक्षा कर सकेंगे, इस पर उन्हें विश्वास नहीं होता था। किसी भी प्रकार से इस महल के बाहर होने पर ही उनकी प्राण-रक्षा हो सकती है।

थोड़ी देर के बाद सुरमा ने उदयादित्य से कहा—इस तरह हम लोगों के यहाँ खड़े रहने से कोई भी लाभ नहीं हो सकता। हमलोग महाराज के संकल्प में जितनी बाधा डालने की चेष्टा करेंगे, उतना ही वे अपने निश्चय पर और दृढ़तर होते जायँगे। आज रात्रि में ही इन्हें महल के बाहर कर देना उचित होगा और इसी का आप प्रयत्न करें।

उदयादित्य ने चिंताकुल होकर सुरमा की ओर देखा। फिर बोले—अच्छी बात है, मैं जाता हूँ। शायद सफलता मिल जाय!

उदयादित्य अपनी तलवार लेकर आगे बढ़े। सुरमा भी उनके पीछे-पीछे गई। कुछ दूर पर एकांत में सुरमा उनके गले से लिपट गई। उदयादित्य ने प्रेमपूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखकर उसका मुँह चूम लिया और आगे बढ़ गये। सुरमा वहाँ से अपने शयनागार में आई। उसकी आँखों से आँसू निकल रहे थे। वह एकदम अधीर हो उठी। वह घुटने टेक कर भगवती से करबद्ध प्रार्थना

करने लगी—माँ, यदि मुझमें सच्चा पति-प्रेम है; यदि मुझमें सच्चा पातिव्रत है तो इस बार महाराज के हाथ से मेरे पति की रक्षा करो। केवल तुम्हारे ही भरोसे आज मैंने उन्हें विपत्ति के मुख में जाने दिया। यदि तुम सहायक न होगी तो मैं किससे जाकर भिक्षा माँगूँ? केवल तुम्हारा ही आसरा है, माँ!—उसने कई बार 'माँ, माँ' कहकर पुकारा। किन्तु न जाने क्यों उसका हृदय बार-बार यह कह रहा था कि देवी ने उसकी प्रार्थना नहीं सुनी। उसने फिर रोकर कहा—माँ, मेरा क्या कसूर है, इस दासी की पुकार पर आप क्यों नहीं ध्यान देतीं?—इस बार भी सुरमा को कुछ उत्तर न मिला। उसने व्याकुल होकर इधर-उधर देखा। उसे चारो ओर प्रलय की विकराल मूर्ति नाचती हुई दिखाई पड़ी। वह अत्यन्त भयभीत हो उठी। वहाँ से उठ कर वह विभा के कमरे में चली गई।

विभा को देखकर वसन्तराय ने अधीर होकर कहा—उदय अभी तक नहीं लौटा। न जानें क्या होने वाला है?

सुरमा ने धीरज से कहा— जो ईश्वर को मंजूर होगा, वही होगा!

रामचन्द्र राय के हृदय में उस समय राममोहन माल के ऊपर बड़ा ही क्रोध उत्पन्न हो रहा था। उसी के कारण यह संकट उपस्थित हुआ। नाना प्रकार के दण्ड का विधान उसके लिए कर रहे थे; किन्तु दण्ड देने का अवसर आयेगा या नहीं, यह सोचकर चित्त चञ्चल हो जाता था।

इधर उदयादित्य ने मुख्य द्वार पर जाकर जोर से धक्का देकर पुकारा— कौन है?

बाहर से उत्तर मिला—सरकार, मैं हूँ, सीताराम।

उदयादित्य ने कड़ककर कहा—फौरन फाटक खोलो।

सीताराम ने तुरन्त द्वार खोल दिया। युवराज जब बाहर

जाने लगे तब उसने हाथ जोड़कर कहा—सरकार, क्षमा कीजिए, आज रात्रि में महल के बाहर किसी को जाने का महाराज का हुक्म नहीं है।

युवराज ने कहा—सीताराम, क्या तुम भी मेरे विरुद्ध अस्त्र उठाना चाहते हो? अच्छा तो फिर आओ पहले हम तुम निपट लें।—यह कहकर उदयादित्य ने म्यान से तलवार निकाल ली।

सीताराम ने हाथ जोड़कर विनीत भाव से कहा—नहीं, युवराज! आप ऐसी धारणा कभी न करें। आपने दो दो बार मेरी प्राण-रक्षा की है। मैं कभी ऐसा दुस्साहस नहीं कर सकता।

युवराज—तो तुम क्या चाहते हो? जल्दी बोलो, समय बहुत कम है।

सीताराम ने उसी भाव से कहा—जिस जीवन को आपने दो बार बचाया है, उसे नष्ट न होने दीजिए। आप मेरे हथियार छीन कर हाथ पैर बाँध दीजिए। इसके अतिरिक्त महाराज के सामने मेरी प्राण-रक्षा का कोई अन्य उपाय नहीं।

उदयादित्य ने उसकी बात मान ली और उसके अस्त्र लेकर हाथ पैर उसी के वस्त्र से कसकर बाँध दिया। वह उसी जगह पड़ा रहा। युवराज वहाँ से आगे की ओर बढ़े। आगे एक ऊँची दीवार थी जिसमें केवल एक ही द्वार था। वह भी बन्द था। इस महल के बाहर जाने का वही प्रधान मार्ग था। युवराज उछल कर दीवार पर चढ़ गये। उन्होंने देखा कि द्वार-रक्षक दीवार के सहारे आनन्द से सो रहा है। वे बड़ी सतर्कता से नीचे उतर गये और पहले उस आदमी का हथियार छीन लिया फिर उसे कस कर बाँध दिया। पहरेदार घबरा गया। उसके पास से ताली लेकर उन्होंने द्वार खोल दिया। जब पहरेदार का चित्त ठिकाने हुआ तब उसने आश्चर्य से पूछा—युवराज, यह क्या कर रहे हैं?

युवराज ने कहा—भीतर का रास्ता खोलता हूँ।

पहरेदार—कल महाराज को मैं क्या उत्तर दूँगा ?

युवराज—कह देना कि युवराज ने मुझे पराजित कर के जबरदस्ती द्वार खोल दिया। ऐसा कहने से तुम बच जाओगे।

युवराज बाहर निकल कर पहले उस कमरे में गये जिसमें रमाई और राममोहन सोये थे। बाकी लोग नौका पर सोने चले गये थे। युवराज ने धीरे-धीरे राममोहन को जगाया। वह चौंक कर उठ बैठा और आश्चर्य से युवराज की ओर देख कर बोला—युवराज, आप यहाँ! क्या बात है ?

युवराज ने कहा—बाहर चलो, सब हाल कहता हूँ।—यह कह कर उसे बाहर ले जाकर उन्होंने सब वृत्तान्त कह सुनाया।

सब हाल सुन कर राममोहन ने सिर पर चादर लपेट कर और हाथों में लाठी लेकर कहा—देख लूँगा, लछमन सरदार कितना बलवान है। आप एक बार हमारे महाराज को मेरे पास पहुँचा दें, फिर तो मैं अकेला सौ मनुष्यों से निपट लूँगा !

युवराज ने उसे शान्त करते हुए कहा—मुझे तुम्हारी वीरता और साहस पर विश्वास है, किन्तु यशोहर में सौ से कहीं अधिक व्यक्ति हैं। कोई दूसरा उपाय सोचो, इससे काम न चलेगा।

राममोहन ने कहा—अच्छा, पहले आप महाराज को मेरे पास पहुँचा दें। उनके आ जाने पर मैं निश्चिन्त होकर उपाय सोच सकूँगा।

उदयादित्य महल के अन्दर चले गये और रामचन्द्रराय को अपने साथ ले आये। उनके साथ-साथ सभी लोग वहाँ आये।

राममोहन को देखते ही रामचंद्र राय की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो उठी। उन्होंने कड़क कर कहा—तुमको मैं नौकरी से अलग करता हूँ। तू मेरी आँखों के सामने से दूर हट जा। पुराना नौकर होने के कारण इतना ही दण्ड देता हूँ। मैं तेरा मुँह नहीं देखना

चाहता।—यह कहते-कहते उनका गला भर आया; क्योंकि वे राममोहन को हृदय से चाहते थे।

राममोहन ने हाथ जोड़ कर कहा—महाराज, मुझे नौकरी से अलग करने का आपको अधिकार नहीं है। वह ईश्वर की दी हुई है और जब मेरा यह शरीर छूटेगा तभी मैं इस नौकरी से अलग हो सकूँगा। जिसने नौकरी दी है, वही अलग भी कर सकता है। आप चाहे मुझे रक्खें या न रक्खें, मैं तो आपका सेवक हूँ और रहूँगा।—यह कह कर वह उनके पास जाकर खड़ा हो गया।

उदयादित्य ने पूछा—राममोहन कुछ उपाय सोचा या नहीं ?

राममोहन—आपके आशीर्वाद से इस लाठी के द्वारा ही सब काम ठीक हो जायगा। माँ काली का भरोसा रखने से ही सफलता मिलेगी।

उदयादित्य ने कहा—यह ठीक न होगा। यह बताओ कि तुम्हारी नौका किधर है ?

राममोहन—राजमहल के दक्षिण ओर की नहर में।

उदयादित्य—अच्छा, एक बार मेरे साथ छत के ऊपर आओ।

राममोहन की समझ में भी एक उपाय आया। उसने कहा—ठीक है, वहीं चलिए।

सब लोग छत पर गये। छत से ४०-५० हाथ नीचे नहर है और वहीं रामचन्द्र राय की नौका बँधी है। राममोहन ने उदयादित्य से कहा—मैं महाराज को अपनी पीठ पर बाँध कर यहाँ से नहर में कूद पड़ूँगा।

वसंतराय ने भयभीत होकर राममोहन से कहा—नहीं, नहीं ! तुम ऐसा न करो !

विभा और रामचन्द्र राय भी एक साथ ही बोल उठे—नहीं यह ठीक नहीं है।

तब उदयादित्य नीचे जा कर बहुत-सी मोटी-मोटी चादरें उठा

लाये। राममोहन ने उन्हें ऐंठ कर और बीच-बीच में गाँठ देकर बड़ी-सी रस्सी बना डाली। छत के पाये से उसके एक छोर को बाँध कर दूसरा छोर नीचे लटका दिया। रस्सी नाव तक जा पहुँची। तब राममोहन ने रामचन्द्र से कहा—महाराज आप मेरी पीठ पर लिपट कर मुझे खूब अच्छी तरह पकड़ लें। मैं रस्सी के सहारे नीचे उतर जाऊँगा।

रामचन्द्र राय ने कोई दूसरा मार्ग न देखकर राममोहन की बात को मान लिया। सब लोगों का चरण-स्पर्श करके राममोहन ने विभा से कहा—माँ, अब मैं जाता हूँ। जब तक तुम्हारा यह पुत्र है तब तक कोई भय नहीं है। यह कह कर उसने रामचन्द्र राय को अपनी पीठ पर चढ़ा लिया। रामचन्द्र ने भी उसे खूब कस कर पकड़ लिया। अब वह धीरे-धीरे रस्सी के सहारे नीचे उतरने लगा। विभा हृदय कड़ा करके खड़ी रही, पर वसन्तराय मारे भय के काँपने लगे और माँ दुर्गा का ध्यान करने लगे। राममोहन ने नीचे उतर कर रामचन्द्र राय को सहारा देकर खड़ा कर दिया, किंतु रामचन्द्र उसी समय बेहोश हो गये, इधर विभा भी मूर्छित होकर गिर पड़ी। वसंतराय ने आँख खोल कर कहा—अरे! यह क्या हुआ? उदयादित्य विभा को उठाकर नीचे ले गये। अब सुरमा ने उदयादित्य से कहा—अब आपने अपने लिए क्या उपाय सोचा है?

उदयादित्य—तुम इसकी कोई चिंता न करो!

इधर मल्लाहों ने नाव बढ़ा दी, किंतु थोड़ी ही दूर जाने पर नाव एकाएक रुक गई। बड़े-बड़े लट्ठों से नहर का मुँह बंद था। इसी समय प्रहरियों ने दूर से देखा कि नौका भागी जा रही है। उन लोगों ने पत्थर फेंकना शुरू किया, किंतु एक भी पत्थर वहाँ तक न पहुँच सका। राममोहन और मल्लाहों ने किसी प्रकार लट्ठों को हटा कर नाव को आगे बढ़ाया। जब

नौका भैरव नद में पहुँची तब सेनापति ने तोप दागी। इस समय प्रतापादित्य को कुछ नींद आ गई थी जो उस तोप की आवाज से टूट गयी और वे चौंक कर उठ बैठे।

—।-ॐ-।—

१२

प्रतापादित्यने बाहर आकर पहरेदार को पुकारा, किन्तु कोई नहीं बोला। दुबारा आवाज देने पर एक नौकर दौड़ा आया। उसने मंत्री को बुलवाया। मंत्री के आने पर प्रतापादित्य ने पूछा—मंत्री, सब पहरेदार कहाँ हैं ?

मंत्री—बाहरी द्वार के प्रहरी भाग गये।

मंत्री ने सोचा कि यदि स्पष्ट उत्तर नहीं दिया जाता तो प्रतापादित्य का क्रोध और भयंकर हो जायगा; इसीलिए उन्होंने साफ-साफ कह दिया।

प्रतापादित्य ने फिर पूछा—अंदर के पहरेदार क्या हुए ?

मंत्री—अभी देखा है कि वे बँधे पड़े हैं।

मंत्री को रात्रि की घटना का हाल जरा भी ज्ञात न था; किंतु कोई भयंकर दुर्घटना हुई है, इसका अनुमान उन्हें हो गया था। प्रतापादित्य से उस सम्बन्ध में कुछ पूछना भी कठिन था।

प्रतापादित्य ने आँखें लाल करके पूछा—रामचन्द्र राय कहाँ है ? उदयादित्य और वसंतराय कहाँ हैं ?

मंत्री—वे लोग हवेली के अंदर होंगे ?

प्रतापादित्य ने झुँझला कर पूछा—अनुमान की बात मैं नहीं पूछता। अनुमान तो मुझे भी है। मैं निश्चय रूप से जानना चाहता हूँ।

मंत्री धीरे-धीरे बाहर निकल आये और रमापति से सब हाल पूछा। रामचन्द्र राय के निकल भागने का हाल सुनकर कुछ चिंता हुई। वे उसी समय बाहर गये। वहाँ रमाई को बैठा देख कर एक नौकर द्वारा उसे प्रतापादित्य के पास ले आये। प्रतापादित्य का क्रोध उसे देखते भड़क उठा। इधर रमाई ने मुँह बना कर और हाथ चमकाकर महाराज को खुश करने के लिये कुछ बोलना चाहा; किन्तु महाराज उसकी इस हरकत को सह न सके। उन्होंने कहा— इसे फौरन मेरे सामने से हटाओ, जल्दी दूर करो !

रमाई उसी समय बाहर निकाल दिया गया।

मंत्री ने कहा—महाराज, जामाता जी कल रात्रि से ही महल में नहीं है, कहीं चले गये।

प्रतापादित्य ने आश्चर्य से पूछा— रामचन्द्र राय महल से चला गया ! पहरेदार सब क्या हुए ?

मन्त्री—बाहर के सब पहरेदार भाग गये।

प्रतापादित्य ने होठ चबाकर कहा—भागकर कहाँ जा सकते हैं ? जो जहाँ मिले वहाँ से पकड़कर ले आओ। अंदर के पहरेदारों को भी बुलाओ।

मंत्री फिर धीरे-धीरे बाहर चले गये।

प्रातःकाल होने पर जब चारों ओर अच्छी तरह सूर्य का प्रकाश फैल गया तब वसंतराय के हृदय को शान्ति मिली। उन्होंने चित्त को स्थिर करके रात्रि की समस्त घटना पर एक बार पुनः विचार किया। इसके बाद वे हवेली के मुख्य द्वार पर, जहाँ सीताराम पहरेदार बँधा था, पहुँचे। वह अभी तक उसी अवस्था में पड़ा था। वसंतराय ने उससे कहा—देखो सीताराम, यदि प्रतापादित्य तुमसे पूछें कि तुम्हें किसने बाँधा है तो तुम मेरा नाम बता देना। प्रताप को तुम्हारी बात पर विश्वास हो जायगा क्योंकि उन्हें मालूम है कि किसी समय मैं बहुत बलवान था।

सीताराम भी उदयादित्य का नाम प्रतापादित्य के सामने प्रकट करना नहीं चाहता था। महाराज को क्या उत्तर देगा, इसी चिंता में वह पड़ा था। वसंतराय की बात उसने फौरन मान ली। फिर वसंतराय वहाँ से दूसरे पहरेदार के पास पहुँचे। उससे कहा—भागवत, प्रताप के पूछने पर तुम मेरा नाम बता देना और कहना कि मैंने जबरदस्ती तुम्हें बाँध दिया है।

भागवत बोला—राम-राम! ऐसा अधर्म मैं नहीं कर सकता। झूठ बोल कर आप पर मिथ्या दोष कैसे लगाऊँगा?

वसंतराय ने उसे समझा कर कहा—भागवत, तुम भूल कर रहे हो। किसी भले व्यक्ति की प्राण रक्षा के लिए यदि झूठ बोलना पड़े तो उससे पाप नहीं होता। मेरे अनुरोध करने का जो कारण है उस पर विचार करो।

भागवत—लेकिन सरकार, स्वामी के आगे मुझसे झूठ न कहा जायगा।

वसंतराय बड़े चिंतित हुए। उन्होंने व्याकुल होकर कहा—देखो भागवत, तुम मेरा मतलब नहीं समझ रहे हो। तुम्हें लेश-मात्र भी पाप न होगा। यदि तुम मेरी बात मानोगे तो मैं तुम्हें प्रसन्न कर दूंगा। अभी जो कुछ मेरे पास है उसे लो बाद में मैं तुम्हें भारी इनाम दूंगा।

भागवत ने तुरन्त हाथ फैलाकर उन रुपयों को ले लिया। वसंतराय का चित्त भी कुछ स्थिर हुआ और वे वहाँ से लौट गये।

मंत्री उन दोनों प्रहरियों को लेकर प्रतापादित्य के पास गये। प्रतापादित्य अपने क्रोध को दबा कर गम्भीर भाव से बैठे थे। उन्होंने प्रहरियों से पूछा—कल रात्रि में हवेली का द्वार क्यों खोला गया।

सीताराम काँप उठा। उसने हाथ जोड़कर कम्पित स्वर में कहा—दुहाई सरकार की, मेरा कोई अपराध नहीं है!

प्रतापदित्य ने भौंहें सिकोड़ कर कहा—अपराध की बात तुमसे कौन पूछता है ? जो पूछा जाता है उसका उत्तर दो।

सीताराम ने फौरन कहा—जी नहीं, सरकार, कहता हूँ, युवराज मुझे जबरदस्ती बाँधकर बाहर गये थे।

आखिर युवराज का नाम जल्दी में उसके मुँह से निकल ही गया। वह सोच रहा था कि युवराज का नाम उसके मुँह से न निकले, किंतु घबराहट में एकाएक उसने उन्हीं का नाम ले लिया। एक बार कह देने पर फिर वह अपनी बात लौटा ही कैसे सकता था।

बसंतराय ने जब सुना कि पहरेदारों को बुलाया गया है तब वे फौरन घबराये हुए प्रतापादित्य के पास पहुँचे। उन्होंने सीताराम को कहते सुना—महाराज, युवराज को मैंने बहुत मना किया; किंतु उन्होंने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। अब आप स्वयं—

बसंतराय बीच ही में बोल उठे—अरे! सीताराम, तू क्या कह रहा है ? झूठ बोलकर अपने सिर पाप क्यों लेता है ? सच्ची बात क्यों नहीं कहता ? उदयादित्य तो निर्दोष है ?

बसंतराय को देखते ही सीताराम सकपका गया। उसने जल्दी में कहा—नहीं, नहीं, युवराज का इसमें कोई दोष नहीं है।

प्रतापादित्य ने डाँटकर कहा—तब सब कसूर तेरा ही है।

सीताराम—जी नहीं, सरकार।

प्रतापादित्य—तब कौन दोषी है ?

सीताराम—जी, युवराज—

भागवत से पूछा गया। उससे सब बातें ठीक-ठीक कह दी। केवल अपने सोये रहने की बात छिपा गया। अब बसंतराय बड़े व्याकुल हुए। उनकी बुद्धि ही मानो कुंठित हो गई। अंत में कोई उपाय न देखकर उन्होंने दुर्गा माता का ध्यान करना शुरू किया। मन ही मन उन्हें मनाने लगे। प्रतापादित्य ने दोनों प्रहरियों को

नौकरी से अलग कर दिया और कोड़े मारने का दण्ड सुनाया।

इसके बाद प्रतापादित्य ने वसन्तराय की ओर देखकर कठोर, पर गम्भीर भाव से कहा—उदयादित्य के इस अपराध को क्षमा नहीं किया जा सकता।

उपरोक्त बात कहने में उन्होंने ऐसा भाव प्रकट किया मानों वे उदयादित्य को बीच में रखकर वसंतराय को ही फटकार रहे हों।

वसन्तराय ने शांत भाव से कहा—उदयादित्य का कोई दोष नहीं है, प्रताप !

प्रतापादित्य ने आँखें लाल करके कहा—उदय की ओर से पैरवी करके आप उसे और अधिक दोषी बनाकर दंड दिलाना चाहते हैं। आप से कौन पूछता है कि उदय दोषी है अथवा नहीं ? आपको फैसला करने की क्या आवश्यकता पड़ी है ?

वसंतराय ने जब देखा कि उनके बोलने से बात बिगड़ रही है तो वे चुप हो गये। उनकी चिंता और भी बढ़ गयी।

प्रतापादित्य कुछ देर चुप रहे। जब चित्त कुछ शांत हुआ तब बोले—मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि उदय में विचार-शक्ति नहीं है और न उसमें आत्म बल है। उसे जो चाहे अपने इशारों पर नचा सकता है। वह इतना बड़ा मूर्ख है कि उसे भले-बुरे का ज्ञान ही नहीं है। यदि ये बातें उसमें न होतीं तो आज उसके जीवन का अंत था। बिना किसी के उसकाये वह कोई कार्य नहीं कर सकता। इसीलिये मैं उसके कार्यों को देख कर कारण पर विचार करता हूँ और उसे दण्ड देने को भी जी नहीं चाहता। तब उसी प्रकार नादान बच्चे से कोई भी कार्य कराया जा सकता है जिस प्रकार उदय को भी इशारों पर नचाया जा सकता है। जैसे बालक को दंड नहीं दिया जाता वैसे ही उदय भी दंड योग्य नहीं। इन्हीं बातों को सोचकर मैं उसके कार्यों की ओर से उपेक्षा रखता

हूँ। किंतु आप से मैं इस बार स्पष्टरूप से समझाकर कह देता हूं कि यदि आपने यशोहर आकर फिर कभी उदय से मुलाकात की तो परिणाम बड़ा भयङ्कर होगा। उसकी प्राण-रक्षा होनी कठिन हो जायगी।

वसंतराय शान्त भाव से बैठ सब सुनते रहे। अंत में उन्होंने उठकर धीरे-धीरे कहा—अच्छा प्रताप, आज सायंकाल मैं यहाँ से चला जाऊँगा। तुम अपना क्रोध शांत करो। यह कहकर वे एक ठण्ढी साँस खींचकर वहाँ से धीरे-धीरे चले गये।

—:o:—

१२

सीताराम और भागवत के नौकरी से हटाये जाने का समाचार जब उदयादित्य को मिला तब उन्हें बड़ा दुःख हुआ। सीताराम की अवस्था बड़ी शोचनीय थी। एक तो वह बहुत ही गरीब था, दूसरे उसका कुटुम्ब बड़ा था। उदयादित्य ने दोनों को बुलाकर सान्त्वना दी और कुछ मासिक सहायता नियत कर दिया।

प्रतापादित्य को जब यह बात मालूम हुई तब उन्होंने उदयादित्य को बुलाकर कहा—मैंने सुना है कि तुमने उन दोनों पदच्युत पहरेदारों को अपने पास से मासिक सहायता देना स्वीकार किया है। क्या खजाने में रुपये का अभाव था जो उन दोनों को नौकरी से अलग कर दिया गया? मैं जानना चाहता हूँ कि ऐसा तुमने क्यों किया?

उदयादित्य ने धीरे से कहा—अपराध मैंने किया था, पर दण्ड उन्हें मिला। वास्तव में मुझे दण्डित होना चाहिए। इसीलिए मैंने प्रति मास जुरमाने का रुपया उन्हें देना स्वीकार किया है।

प्रतापादित्य बड़ी सावधानी से युवराज की बातें सुन रहे थे। युवराज ने बड़ी ही गम्भीरता और धीरता से उपरोक्त बातें कही थी। प्रतापादित्य उनकी बातों से भीतर ही भीतर जल उठे, किंतु और कुछ न कहकर केवल इतना ही बोले—उदय, मेरी आज्ञा है कि भविष्य में उन्हें किसी प्रकार की सहायता न दी जाय।

उदयादित्य ने विनीत स्वर में कहा—इतना बड़ा दण्ड मुझे क्यों दिया जा रहा है? मेरे कारण कई आदमी भूखों मरें और मैं देखता रहूँ; यह कैसे हो सकता है? आप मुझे आवश्यकता से अधिक भोजन देकर मेरे सामने बैठे हुए भूख से तड़पते आदमियों को उसमें से कुछ देने के लिए मना करें तो यह कहाँ तक उचित है? उस भोजन को मैं कैसे खा सकूँगा?

युवराज की आवेगपूर्ण बातों को सुनकर प्रतापादित्य ने धीरे-धीरे कहा—तुम्हें जो कुछ कहना था कह चुके। अब मेरी बात ध्यान से सुनो। मैंने सीताराम और भागवत का मासिक वेतन बंद कर दिया है। ऐसी अवस्था में यदि कोई उन्हें कुछ सहायता देता है तो वह मेरी इच्छा का विरोधी समझा जायगा।

युवराज ने प्रतापादित्य की बातों का कुछ उत्तर न दिया। वहाँ से उठकर उन्होंने सुरमा के पास जाकर सब हाल कहा। सुरमा दुःखित होकर बोली—राम राम, उस रोज दिन भर सब भूखों मर गये। शाम को सीताराम की माँ उसकी लड़की को लेकर मेरे पास आई और विलाप करने लगी। मुझसे उन लोगों का दुःख न देखा गया। उसे अपने पास से जब कुछ दिया तब उन लोगों ने मिलकर खाया। यदि उन्हें कुछ सहायता न दी जायगी तो वे कहाँ जायँगे? बेचारे निराश्रित हैं।

उदयादित्य ने कहा—तुम ठीक कहती हो, पिताजी के डर से कोई भी उनकी सहायता न करेगा। अपने पास कोई उन्हें बैठने भी न देगा। बेचारे कहीं के न रह जायँगे। ऐसी अवस्था में मैं

उनकी सहायता अवश्य करूँगा। मैं उनका कष्ट नहीं देख सकता। किन्तु एक बात है कि पिताजी को भी नाराज करना ठीक नहीं। इसलिए कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे उनकी सहायता भी की जाय और पिताजी को पता भी न लगे। गुप्त रूप से सब काम होता जाय।

सुरमा उदयादित्य पर कोई आँच नहीं आने देना चाहती थी। उसने कुछ सोचकर कहा—ठीक है, आप इसकी चिंता न करें। सब भार मेरे ऊपर छोड़ दें। मैं सब प्रबन्ध कर लूँगी। आप निश्चिन्त रहें। महाराज को पता न लगेगा और सब काम भी होता जायगा।

१४

यद्यपि सुरमा और उदयादित्य ने पहरेदारों को सहायता देने की बात को गुप्त रखने का बहुत प्रयत्न किया किन्तु प्रतापादित्य के कानों तक यह खबर पहुँच ही गई। उन्होंने अन्तःपुर में कहला भेजा कि सुरमा को अपने पिता के यहाँ जाना होगा। उदयादित्य को इससे बड़ा क्लेश हुआ। विभा को भी यह संवाद मिला। उसने सुरमा के गले से लिपटकर रोते हुए कहा—भाभी, यदि तुम मुझे छोड़कर चली जाओगी तो मैं इस श्मशान में कैसे रहूँगी? मुझे सांत्वना देने वाला यहाँ कौन है?

सुरमा ने विभा को समझाया और कहा—विभा, तुम क्यों दुखी होती हो? मैं तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगी।

सुरमा से जब प्रतापादित्य की आज्ञा कही गई तब उसने कहा—मैं बाप के घर क्यों जाऊँ? न तो वहाँ से मुझे कोई बुलाने

आया है और न मेरे स्वामी की ही मुझे भेजने की इच्छा है। इसलिए बिना कारण मैं नैहर क्यों जाऊँ?

प्रतापादित्य ने जब सुरमा का उत्तर सुना तब उनका शरीर क्रोध से जल उठा। किन्तु लाचारी थी कि सुरमा को घर से निकाला नहीं जा सकता था। कोई उपाय न देखकर उन्होंने रानी से कहा—सुरमा को उसके नैहर भेज दो।

रानी बोलीं—यदि सुरमा को भेज दिया जायगा तो उदय की क्या दशा होगी? प्रतापादित्य ने बिगड़ कर कहा—उदय अब कोई बालक नहीं है। मैं कुछ राजकीय कारण से सुरमा को यहाँ से हटाना चाहता हूँ।

रानी वहाँ से चली गईं और उदयादित्य को बुलाकर बोलीं—बेटा, सुरमा को उसके नैहर भेज दो। उदयादित्य ने कहा—ऐसा क्यों कहती हो, माँ? उसने क्या अपराध किया है?

रानी ने कहा—मैं क्या जानूँ, बेटा? सुरमा के नैहर चले जाने से राजकाज में महाराज को क्या सुभीता होगा, इसे वे ही जाने। मैं क्या बतला सकती हूँ।

उदयादित्य ने दुखी होकर कहा—माँ, मैं नहीं समझता कि मुझे दुखी बनाने से राज्य की क्या उन्नति होगी। मेरे लिए तो संसार में सुख ही नहीं। सुरमा भी रात दिन कष्ट ही सह रही है। वाक्यबाणों से उसे दोनों समय छेदा जाता है, किन्तु वह कुछ नहीं कहती। इतने पर भी क्या हृदय में शान्ति नहीं मिलती? अब उसके लिये क्या इस राजभवन में रहने का भी स्थान नहीं है? उसका भी आप लोगों से कुछ सम्बन्ध है और यहाँ अधिकार है। यदि आप लोग उसे यहाँ से निकालना ही चाहते हों तो मुझे भी आज्ञा दीजिए। मैं भी चला जाऊँगा।

उदयादित्य की बातों को सुनकर रानी रोने लगीं। कुछ देर के बाद उन्होंने कहा—न जानें महाराज क्या सोचते हैं?

उनके दिल की बात मैं नहीं समझ सकती किन्तु इतना मैं भी कहूँगा कि बहू के लक्षण शुभ नहीं हैं। उनसे किसी को भी सुख नहीं है। यदि वह कुछ दिनों के लिए नैहर चली ही जायगी तो क्या हानि होगी? उसके जाने पर तुम देखोगे घर की शोभा पलट जायगी।

उदयादित्य ने कुछ उत्तर न दिया। वे वहाँ से उठकर चले गये।

रानी ने प्रतापादित्य के पास जाकर रोते हुए कहा—महाराज यदि सुरमा को भेज दिया जायगा तो उदय किसी प्रकार नहीं रह सकता। उसने मेरे बच्चे पर जादू कर दिया है। डायन की तरह अपने वश में कर लिया है। मेरा बच्चा बेकसूर है।

प्रतापादित्य ने क्रोधित होकर कहा—यदि सुरमा नैहर न जायगी तो उदय को कैदखाने में रहना पड़ेगा। उसे कठोर दण्ड सहना पड़ेगा।

महाराज के पास से लौटकर रानी सुरमा के पास गईं और बोलीं—तूने कौन-सा जादू मेरे बच्चे पर कर दिया कि उसकी बुद्धि पलट गई? तू मेरे उदय की जान छोड़ दे। तेरे ही कारण वह इतना दुःख भोग रहा है। अब क्या तू उसके हाथों में हथकड़ी ही पहनवा कर छोड़ेगी?

सुरमा ने चकित होकर कहा—क्या मेरे कारण उनके हाथों में हथकड़ी पड़ेगी? नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा। माँ, मैं अभी नैहर जाने के लिए तैयार हूँ।

सुरमा ने उसी समय विभा से सब हाल कहा। विभा का हृदय काँप उठा। वह कुछ बोल न सकी। सुरमा ने उसे गले लगाकर कहा—प्यारी विभा, अब मैं तुमसे अलग हो रही हूं। मुझे फिर यहाँ बुलाने वाला कौन है? विभा रोने लगी। सुरमा बैठ गई। भविष्य की चिन्ता उसे व्याकुल करने लगी।

उसे सारा संसार अन्धकारमय दीखने लगा। वह बेचैन हो उठी। एक भयङ्कर ज्वाला उसे दग्ध करने लगी! इसी समय उदयादित्य को आते देखकर वह लपककर उनके पैरों से लिपट गई। उसके आँसू न रुके, फूट-फूटकर रोने लगी। उदयादित्य का चित्त भी चञ्चल हो उठा। उन्होंने सुरमा को उठाया और उसके आँसू पोंछते हुए पूछा—सुरमा, क्या बात है? मेरी सौगन्ध है, सच-सच कहो। सुरमा का गला भर गया था। उसके मुँह से प्रयत्न करने पर भी आवाज नहीं निकल रही थी। थोड़ी देर के बाद चित्त स्थिर करके बोली—अब मैं इन चरणों की पूजा न कर सकूँगी। इस चन्द्रमुख का दर्शन मेरे भाग्य में अब नहीं। सायंकालके समय मैं आप के साथ खिड़की के पास न बैठ सकूँगी। रात्रि होने पर अब मैं इन कोमल करों को पकड़ कर आपको महल के अन्दर न ले जा सकूँगी। आपकी मधुर बातें अब मेरे तृषित कानों को तृप्त न कर सकेंगी। मेरे भाग्य से —— कहते-कहते उसका गला भर गया और वह फिर फूट-फूटकर रोने लगी।

—:०:—

१५

उदयादित्य के मुख से पहले परिच्छेद में ही पाठकगण रुक्मिणी के विषय में कुछ-कुछ जान चुके हैं। वही रुक्मिणी यशोहर में आकर मंगला नाम से ठहरी हुई है। उसकी आंतरिक अभिलाषा है कि उदयादित्य जब सिंहासनारूढ़ हों तब वह उनके हृदय और यशोहर पर एक साथ शासन करे। अपनी अभिष्ट सिद्धि के लिए वह नाना प्रकार के व्रत और अनुष्ठान किया करती है। रात-दिन उसके हृदय में यही एक आशा जागरित रहती है। राज्य के सभी लोगों के हृदय में उसने अपना एक स्थान बना

लिया। अन्तःपुर के दास-दासियों तक को उसने मुट्ठी में कर लिया है। छोटी से छोटी खबर उसके कानों तक पहुँचे बिना नहीं रहती। सुरमा कब प्रसन्न और कब उदास रहता है, उसे फौरन मालूम हो जाता है। वह अपने मार्ग-कण्टक के दूर होने का आसरा देखा करती है। रुक्मिणी को जब मालूम हुआ कि राजा और रानी सुरमा से अत्यन्त क्रुद्ध हैं और उसे नैहर भेजना चाहते हैं तो बड़ी खुश हुई।

जड़ी-बूटियों के संग्रह, जप-तप, व्रतोवास एवं अनुष्ठानादि के कारण रुक्मिणी को लोग तन्त्र-मन्त्र जानने वाला समझने लगे थे। रानी के पास भी यह खबर पहुँची कि मंगला नामकी स्त्री तन्त्र-मन्त्र और तरह-तरह की जड़ी-बूटी जानती है। उन्होंने सोचा, सुरमा ने उदयादित्य का मन अपने वश में कर लिया है। सुरमा के जाने के पहले उससे उदयादित्य का मन यदि लौटा लिया जाय तो अच्छा हो। उसी विचार से उन्होंने एक दासी को मंगला के पास जड़ी लाने के लिए भेजा।

दासी का अनुरोध मंगला ने स्वीकार कर लिया। वह मन्त्र पढ़कर जड़ी-बूटी कूटने में लग गई। पाँच दिनों तक रात-रात भर जागकर उसने उसे तैयार किया। वह बड़े ही उत्साह के साथ इस काम में लिपटी रही। यद्यपि दवा के तैयार करने में इतना समय नहीं लगना चाहिए था, किन्तु मन्त्र पढ़ने और टोना-टोटका करने में अधिक समय लग गया। यह दवा क्या थी, एक प्रकार का विष था।

कल सुरमा बिदा की जायगी। दोपहर में ही उसे मंगला की दवा चुपके से खिला दी गई। आज सुबह से ही वह अपना कमरा खाली करने में लगी है। उसने सभी सामान विभा को दे दिया। विभा उदास मन से सब देख रही है। उदयादित्य भी दृढ़-प्रतिज्ञ बैठे हैं। उन्होंने निश्चय कर लिया—या तो सुरमा को यहीं

रक्खेंगे या खुद भी उसके साथ चले जायँगे। शाम होते ही सुरमा का जी घबराने लगा। पैर थरथराने लगे और सिर घूमने लगा। वह अपने शयनागार में जाकर लेट रही और विभा से बोली—विभा, उन्हें फौरन बुला दो। अब समय निकट है।

उदयादित्य के कमरे में प्रवेश करते ही सुरमा ने दोनों हाथ फैलाकर कहा—आओ, मेरी तबियत बहुत घबरा रही है। यह कहकर उसने पति के दोनों पैर पकड़ लिये। उसका दम फूल रहा था और हाथ-पैर ठण्ढे हो गये। उदयादित्य का हृदय काँप उठा। उन्होंने डरकर पुकारा—सुरमा, सुरमा! सुरमा ने पलक खोलकर पति के मुँह की ओर देखा और कहा—क्या है प्राणनाथ! उदयादित्य ने पूछा—कैसी तबियत है सुरमा? सुरमा बड़े कष्ट से बोली—मालूम होता है, मेरा अन्तिम समय आ गया। उसने पति को गले लगाने के लिये हाथ उठाना चाहा, किन्तु उठा न सकी। वह पति का मुँह स्थिर दृष्टि से देखती रही। सुरमा का मस्तक उठाकर उदयादित्य ने कहा—सुरमा, तुम मुझे एकाकी बनाकर कहाँ जा रही हो? तुम्हारे बिना मैं कैसे रह सकूँगा! सुरमा की आँखों से आँसू निकल पड़े। उसने विभा की ओर करुण दृष्टि से देखा। विभा बेसुध-सी चुपचाप सुरमा के मुँह की ओर एक दृष्टि से देख रही थी। सुरमा ने पति की ओर देखकर कहा—मेरे अपराधों को क्षमा कीजिएगा। मैं आपके मुँह से कुछ सुनना चाहती हूँ। मेरा सिर घूम रहा है और आँखों से अच्छी तरह कुछ दिखाई नहीं देता। उदयादित्य का हृदय भर आया, कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

धीरे-धीरे सारे राजमहल में यह समाचार फैल गया कि सुरमा ने जहर खा लिया है और उसके प्राण निकल रहे हैं। रानी और अन्य लोग दौड़े हुए उसके पास आये। सुरमा के मुँह की ओर देखकर रानी ने कहा—मेरी रानी, तू कहाँ जा रही है? तू यहीं रह। मेरे घर की तू लक्ष्मी है। तुम्हें कौन यहाँ से निकालेगा!

सुरमा ने सास की पद-धूलि किसी प्रकार मस्तक पर लगाया। रानी जोर से रो उठीं और कहने लगीं—तूने बिना समझे यह क्या कर लिया ? तू मुझे छोड़ कर कहीं न जा। तुझे यहाँ से कोई नहीं हटा सकता। ऐसा अनर्थ तूने क्यों किया ?

सुरमा का कण्ठ रुक गया। उसने बोलने की चेष्टा की, किन्तु एक शब्द भी न बोल सकी। वैद्यों को बुला कर उपचार करवाये गये, किन्तु कोई भी फल न हुआ। दो घड़ी रात रहते ही सुरमा ने पति की गोद में पड़े ही पड़े महाप्रयाण किया। विभा उसके शरीर से लिपट कर रोने लगी। रोते ही रोते वह बेसुध होकर वहीं गिर पड़ी। सबेरा हो गया। अभी तक उदयादित्य सुरमा का मस्तक अपनी गोद में लिये जड़वत् बैठे ही हैं। संज्ञा-शून्य से बैठे सुरमा के मुख पर आँख गड़ाये हुए हैं।

१६

राजा रामचन्द्र राय गद्दी पर अधलेटे बैठे हुए सटक पी रहे हैं। मन्त्री और रमाइ भी यथास्थान बैठे हैं। सामने एक अपराधी खड़ा है जिसका विचार हो रहा है। उसने किसी के द्वारा प्रतापादित्य और रामचन्द्र राय के बीच हुई घटना को सुन कर अपने साथियों में उसकी चर्चा की थी। उसके किसी शत्रु ने यह बात राजा से कह दी। राजा ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उसे पकड़वा मँगाया। इस समय इसी बात पर विचार होने वाला है कि उसे इस अपराध के लिये कौन-सी सजा दी जाय।

राजा ने डपट कर कहा—बोल, तूने इतनी बड़ी हिम्मत कैसे की ?

अपराधी ने रोकर कहा—दुहाई सरकार की। मेरा कोई कसूर नहीं है !

मन्त्री ने डाँट कर कहा—चुप रह नालायक। प्रतापादित्य से हमारे महाराज की बराबरी करने चला है ?

राजा—इस साले का दिमाग इतना बढ़ गया ?

मन्त्री—इस नमकहराम को इतना नहीं मालूम कि प्रतापादित्य का बाप राजा बनने की इच्छा से जब हमारे महाराज के पितामह के पास आकर बहुत गिड़गिड़ाया था तब उन्होंने उसे गद्दी पर बैठाकर अपने बायें पैर के अँगूठे से उसके मस्तक पर तिलक लगाया था।

रमाई ने मुंह बनाकर कहा—प्रतापादित्य जोंक के वंश में पैदा होकर आज साँप की तरह फुफकारना सीख रहा है। हम लोगों ने न जाने कितने साँपों को बाँध डाला। हम सपेरे हैं। क्या साँप और जोंक की पहचान नहीं कर सकते ?

रमाई की बातों से रामचन्द्र राय का चेहरा खिल उठा। आजकल रोज दो-चार बार प्रतापादित्य पर वाग्बाणों की वर्षा होती है। तरह तरह के व्यंग कसे जाते हैं। सभासदों के मुँह से प्रतापादित्य की निन्दा सुनकर रामचन्द्र राय को बड़ी प्रसन्नता होती है। जो हो, अपराधी का भाग्य कुछ अच्छा था। उसके बहुत गिड़गिड़ाने पर रामचन्द्र ने आज्ञा दी—अच्छा, इस बार तो मैं तुझे छोड़ देता हूं, किंतु भविष्य में ऐसी बात मुँह से न निकलने पावे। यदि कभी कोई बात सुनी गई तो सिर धड़ से अलग कर दिया जायगा।

अपराधी महाराज की जय जयकार मनाता हुआ चला गया। रमाई ने फिर प्रतापादित्य की बात छेड़ते हुए कहा—महाराज आप के चले आने पर युवराज की बड़ी दुर्दशा हुई। प्रतापादित्य को बेटी के विधवा होने की क्या चिन्ता ?

मन्त्री—महाराज मैंने तो सुना कि प्रतापादित्य आजकल इस बात से बड़े चिन्तित रहते हैं कि कहीं आप उनकी लड़की को छोड़ न दें। बेचारे अफसोस के मारे भर पेट खाते नहीं।

राजा हँसते-हँसते लोट-पोट हो गये। उन्हें इन बातों से बड़ा मजा आता था।

मन्त्री ने कहा—मैंने तो प्रतापादित्य को कहला भेजा है कि आप अपनी लड़की को यहाँ न भेजें। हमारे महाराज का आपकी लड़की से ब्याह हुआ, इसी से उनके पूर्वजों का उद्धार हो गया। अब उनकी लड़की को अपने यहाँ रखकर महाराज अपनी प्रतिष्ठा नहीं बिगाड़ सकते। उनका इतना भाग्य कहाँ कि उनकी लड़की हमारे राज भवन में आकर रहे। क्यों रमाई भाई, ठीक है न!

रमाई—जी हाँ, इसमें क्या सन्देह है? हमारे महाराज के पैर रखने से कीचड़ का भी भाग्योदय हो गया; किन्तु घर में तो वे उस कीचड़ को धोकर ही आवेंगे!

मन्त्री—उन्हें अपना भाग्य सराहना चाहिए कि महाराज की बदौलत उनकी इज्जत बढ़ गई।

इसी प्रकार तरह-तरह के वाग्बाणों की वर्षा प्रतापादित्य पर होने लगी। रामचन्द्र राय की धारणा है कि उदयादित्य ने अपनी बहन का ख्याल करके उन्हें बचाया। निःस्वार्थ भाव से उन्होंने कुछ नहीं किया। किन्तु विभा के ऊपर अभी भी उनका कुछ-कुछ प्रेम है। विभा सुन्दरी है, सुशीला है। अभी उसका यौवन शुरू हुआ है। उस दिन जब मुँह फेर कर वे सो गये तो विभा उनकी शय्या पर बैठी रोती रही। जब उनकी नींद खुली तब उन्होंने देखा की चन्द्रमा अपने कोमल स्वच्छ करों से विभा के आँसू पोछ रहे हैं। उनके नेत्रों के आगे विभा का विषादमय अनुपम मुखमण्डल नाचने लगा। उन्होंने प्रेम से उसके मुख को चूमने की चेष्टा की, किन्तु उसी समय किसी ने द्वार पर धक्का देकर उनकी लालसा को पूर्ण न होने दिया। मन का वेग मन ही में दबा दिया गया। वह लालसा अभी तक बनी है। विभा से मिलने की उत्कण्ठा उनके चित्त में अभी

भी है, किन्तु विभा को वे अपने यहाँ कैसे बुला सकते थे। ऐसा करने से सभी सभासद उनकी निन्दा करेंगे। लाचार होकर वे इस विषय की चर्चा ही न चलाते थे।

रमाई और मंत्री के चले जाने पर राममोहन माल ने आकर नम्र स्वर में कहा—महाराज!

राजा—क्या है राममोहन?

राममोहन—यदि आपकी आज्ञा हो तो यह सेवक माताजी को बुला ले आवे।

राजा—क्यों?

राममोहन—महाराज, मालकिन के बिना महल सूना लगता है। आपके घर में किसी को न देखकर बड़ा दुःख होता है। हमारी महारानी लक्ष्मी हैं, उनके आने से महल की शोभा दूना हो जायगी और हम लोगों के नेत्र भी उनके दर्शन से सफल होंगे।

राजा—राममोहन, कैसी पागलपन की बात करते हो! उसे क्या हम अपने घर में रख सकते हैं?

राममोहन ने चकित होकर कहा—क्यों महाराज, मेरी महारानी ने कौन-सा अपराध किया है?

राजा—प्रतापादित्य की लड़की को मैं अपने घर कैसे ला सकता हूँ?

राममोहन—महाराज, अब उनका प्रतापादित्य के साथ क्या सम्बन्ध रहा? विवाह के पहले ही तक पिता और पुत्री का सम्बन्ध रहता है। विवाह के बाद पुत्री पर पति का अधिकार हो जाता है, पिता से उसका सम्बन्ध एक प्रकार से टूट जाता है। वह पति की वस्तु हो जाती है। अब वह आप की रानी हैं। यदि आप उन्हें अपने घर न बुलावेंगे, यदि आप उनका आदर न करेंगे तो दूसरा कौन करेगा?

राजा—प्रतापादित्य की लड़की से मेरा सम्बन्ध हो गया,

यही बहुत हुआ ! अब हम उसे अपनी घर में रखकर अपनी प्रतिष्ठा को कैसे नष्ट कर सकते हैं ?

राममोहन—महाराज, उनको घर में रखने से ही प्रतिष्ठा होगी। आप अपनी महारानी को दूसरे के घर में रक्खें और वह उनके ऊपर हुकूमत करे, क्या यह उचित है ? क्या आप इसी में प्रतिष्ठा समझते हैं ?

राजा—यदि प्रतापादित्य अपनी लड़की को न बिदा करें तो ?

राममोहन ने अपनी छाती को ठोककर कहा—महाराज, इतनी शक्ति किसमें है जो हमारी महारानी को न आने देगा ? हमारी महारानी हमारे राजभवन की लक्ष्मी हैं। वह यहाँ आकर इस महल की शोभा बढ़ावेंगी। उन्हें कौन अपने पास रोककर रख सकता है ? प्रतापादित्य चाहे कितने भी शक्तिशाली क्यों न हों, किन्तु वे मुझे रोक नहीं सकते। मैं आप से प्रतिज्ञा करके जाता हूं कि मैं अपनी मालकिन को अवश्य लाऊँगा। यह कहकर राममोहन जाने लगा।

राजा ने उसे रोककर कहा—राममोहन, पहले मेरी बात सुन लो तब जाओ। यदि तुम विभा को लाना ही चाहते हो तो ले आओ, किन्तु देखो, इस बात को कोई जानने न पावे। यहाँ तक कि रमाई और मन्त्री तक को इसकी खबर न हो।

'ऐसा ही होगा महाराज !' कहकर राममोहन चला गया।

यद्यपि विभा के आने पर प्रकट हो ही जायगा, तथापि इस समय इसे अप्रकाशित ही रखना अच्छा होगा। रामचन्द्र राय ने यही विचार स्थिर किया।

—:o:—

१७

सीताराम और रुक्मिणी से आजकल खूब पटती है। इसका कारण यह है कि सीताराम के पास न स्त्री है और न पैसा। बेकार रहने के कारण वह रुक्मिणी के रूप और धन की ओर विशेष रूप से आकर्षित हो गया है। जिस दिन उसके पास पैसा नहीं रहता और घर में भोजन का अभाव रहता है, उस दिन वह रुक्मिणी के यहाँ पहुँच जाता है। उससे जब कोई कुछ पूछता है तो वह तरह-तरह की डींग हाँक जाता है। पूछने वाले चुप हो जाते हैं।

आज सीताराम के पास कुछ नहीं है। वह सीधे रुक्मिणी के पास आया। उसने मुसकुराते हुए एक बार रुक्मिणी के मुख की ओर देखा; फिर मधुर स्वर में कहा—आज मैं तुमसे कुछ माँगने आया हूँ। मुझे कुछ रुपयों की जरूरत है यदि तुम दे दो तो मेरा काम चल जाय।

रुक्मिणी ने प्रेम प्रदर्शित करते हुए कहा—अवश्य दूंगी। तुम जो कुछ भी माँगोगे वह दूंगी। जब मैंने अपना प्राण ही तुम्हारे अर्पण कर दिया है तो रुपया-पैसा कौन सी बड़ी चीज है?

सीताराम ने प्रेम से पिघलकर कहा—मुझे हर समय तुम्हारा भरोसा है। आज कुछ ऐसी ही आवश्यकता आ पड़ी है। मेरा सब रुपया-पैसा मेरी माताजी के पास रहता है। माँ सबेरे ही दामाद के यहाँ चली गईं और जाते समय रुपया देना भूल गईं। लाचार होकर मुझे तुमसे माँगना पड़ा। मैं कल ही तुम्हारा रुपया लौटा दूंगा।

रुक्मिणी ने हँस कर कहा—कैसी बातें कहते हो? रुपया लौटाने की ऐसी कौन-सी जल्दी पड़ी है? जब सुभीता हो तब लौटा देना।

रुक्मिणी (मंगला) का अपने ऊपर ऐसा प्रेम देख कर सीताराम आनन्द से विह्वल हो उठा। वह प्रेम और रसिकता की बातों से उसे प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगा।

वह रुक्मिणी के पास खिसक कर प्रेम से बोला—तुम मेरी सुभद्रा हो और मैं तुम्हारा जगन्नाथ हूँ। बोलो, ठीक है न ?

रुक्मिणी—चलो हटो ! सुभद्रा तो जगन्नाथ की बहन थीं।

सीताराम—अगर सुभद्रा जगन्नाथ की बहन थीं तो सुभद्रा का हरण कैसे हुआ ?

सीताराम समझता था कि इस प्रश्न का उत्तर रुक्मिणी नहीं दे सकती। रुक्मिणी ने हँस कर कहा-बड़े मूर्ख हो।

सीताराम ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—तुम्हारे सामने तो मैं हमेशा मूर्ख हूँ और तुमसे हमेशा हारा हूँ; किन्तु यह तो बताओ कि मैं तुम्हें क्या कह कर पुकारा करूँ।

रुक्मिणी ने हँस कर कहा—प्राण, प्रिये, प्रियतमे, प्राणप्रिये इसमें से जो इच्छा हो, कहो।

सीताराम—अच्छा, प्राणप्रिये, यह बताओ कि तुम जो रुपया मुझे दोगी उसका सूद क्या होगा ?

रुक्मिणी ने अपना हाथ खींचते हुए कहा—जाओ, मैं तुम्हारा प्रेम समझ गयी। अगर तुम मुझे प्यार करते होते तो ऐसी बात कभी न पूछते।

सीताराम ने खुशी से फूल कर कहा—नहीं, नहीं ऐसी बात नहीं है। मैं तो मजाक कर रहा था। प्रिये, तुम नाराज हो गई क्या ?

आजकल सीताराम रोज रुक्मिणीसे रुपये माँगता है; क्योंकि उसकी माँ रोज बिना रुपये दिये दामाद के यहाँ चली जाया करती हैं। सीता राम और रुक्मिणी में खूब पटती है। दोनों में न जानें क्या सलाह हुआ करतो है। एक दिन बातों के सिलसिले में

सीताराम ने उनसे कहा—मेरी समझ में कुछ नहीं आता। इस विषय में भागवत से सहायता लेनी होगी।

आज शाम से ही घटा घिरी है। रह-रह कर बिजली चमक उठती है और मेघों की गर्जना हृदय को कँपा देता है। सनसनाती हुई हवा बह रही है। उदयादित्य अपने कमरे में अँधेरे में ही बैठे हैं। एकाएक उन्हें द्वार पर पैरों की आहट सुनाई पड़ी उन्हें सुरमा का भ्रम हो गया। द्वार की ओर देखने लगे। द्वार खुला और एक स्त्री दीपक लिये भीतर प्रवेश करती दिखाई पड़ी। इन्होंने आँखें बन्द कर पूछा—कौन, सुरमा? फिर नेत्र खोलकर देखा तो सुरमा नहीं थी।

स्त्री ने दीपक रख कर कहा—प्यारे, क्या मुझे एकदम भूल गये? मेरी याद क्या कभी नहीं आती?

उदयादित्य उसकी बात से चौंक उठे। उन्होंने उसकी ओर गौर से देखा किन्तु कुछ भी समझ न सके। यह कौन है, इसे क्या उत्तर दें, यही सोच रहे थे कि रुक्मिणी ने पास आकर कहा—क्या तुमने मुझे अभी तक नहीं पहचाना। यदि ऐसा ही व्यवहार करना था तो तुमने मुझे पहले ही निराश क्यों न कर दिया।

उदयादित्य कुछ न बोले, चुपचाप खड़े रहे।

अब रुक्मिणी ने रो कर कहना शुरू किया—मेरा क्या अपराध है कि तुमने मुझे इस तरह भुला दिया। तुम्हें मैंने अपना तन-मन दे डाला, किन्तु तुमने उसका कुछ भी आदर न किया। एक दिन जो राजकुमार की प्रेम-पात्री थी वही आज मारी-मारी फिर रही है। क्या मेरी फूटी किस्मत में यही लिखा था?

रुक्मिणी के इस अस्त्र की चोट युवराज के हृदय पर पड़ी। उन्होंने सोचा—क्या मालूम, शायद मैंने ही इसका सर्वनाश किया हो। जवानी की वह घड़ी, जब रुक्मिणी उन्हें अपने जाल में फँसा

कर नाचती थी, उन्हें भूल गई। उन्होंने उसके मैले और फटे वस्त्रों को देखकर पूछा—तुम्हें क्या चाहिए ?

रुक्मिणी ने कहा—मुझे और कुछ नहीं, केवल तुम्हारा प्रेम चाहिए। मैं तुम्हारे साथ इस खिड़की में बैठकर और तुम्हारी छाती में मुँह छिपाकर तुमसे सुहाग की भीख चाहती हूं। क्या सुरमा की अपेक्षा मेरा मुँह काला है ? यदि है भी तो वह तुम्हारे ही लिए दर-दर की खाक छानने के कारण हुआ है।

यह कहकर वह युवराज के पलँग पर बैठने चली, किन्तु उन्होंने घबराकर उसे रोकते हुए कहा—नहीं, नहीं, इस पर न बैठना।

रुक्मिणी चुटीली सर्पिणी के समान सिर उठाकर बोली—क्यों न बैठूँ ? मुझे क्यों मना करते हो ?

उदयादित्य ने उनका रास्ता रोककर कहा—नहीं, तुम उस पलँग के पास न जाओ। तुम्हें क्या चाहिए सो कहो; मैं अभी देता हूं।

रुक्मिणी—अच्छा, अपनी यह अँगूठी मुझे दे दो।

उदयादित्य ने फौरन अपनी अँगूठी उसे दे दी। रुक्मिणी उसे अपनी उँगली में पहनकर बाहर चली गई। उसने सोचा, मेरे मन्त्र का प्रभाव नहीं पड़ा। अभी तक उस डाकिनी (सुरमा) के मन्त्र का प्रभाव इनके हृदय पर है। खैर, शीघ्र ही मैं अपना प्रभाव जमा लूँगी।

रुक्मिणी के चले जाने पर उदयादित्य पलँग पर लेट गये और मुँह ढाँपकर रोते हुए बोले—हाय, सुरमा, तू मुझे छोड़कर चली गई। मेरे हृदय की ज्वाला को अब कौन शान्त करेगा ? तेरे बिना मेरे आहत हृदय का कौन उपचार करेगा ?

—:*:—

१८

भागवत कई दिनों से उदास बैठा हुक्का पीता रहता है। उसकी हालत अच्छी नहीं है। इधर कुछ कर्ज हो गया था, किन्तु उसने घरका सामान बेचकर चुका दिया है। यद्यपि वह किसी के पास आता-जाता नहीं, तथापि किसी की बुराई भी नहीं सोचता। हाँ, यदि कोई उसकी बुराई करता है तो वह बिना बदला लिये भी नहीं रहता। हाथ में सुमिरिनी लिये बैठा रहता है। किसी से बात चीत नहीं करता। किन्तु किसीके ऊपर विपत्ति आ पड़ने पर उसे भागवत के समान सुन्दर सलाह भी कोई नहीं दे सकता। उसके इसी स्वभाव के कारण पास-पड़ोस के लोग उसका आदर करते हैं। महल्ले में वह भी भला आदमी गिना जाता है।

एक दिन सीताराम ने भागवत के पास आकर पूछा—कहो भाई क्या हाल है ?

भागवत ने कहा—हालत ठीक नहीं है।

सीताराम—क्यों, क्या बात है ?

भागवत ने तम्बाकू पीकर हुक्का सीताराम को देते हुए कहा—बड़े कष्ट से दिन बीत रहे हैं।

सीताराम—ऐसा क्यों हुआ ? कोई नहीं बात हुई क्या ?

भागवत ने कुछ चिढ़कर कहा—क्या तुम नहीं जानते कि ऐसी हालत क्यों है ? मेरी समझ तो हमारी-तुम्हारी एक ही दशा होनी चाहिए !

सीताराम ने सकुचाकर कहा—नहीं भाई, मेरे पूछने का दूसरा मतलब है। तुम कुछ रुपया उधार क्यों नहीं ले लेते।

भागवत—कर्ज लेकर चुकाऊँगा कहाँ से ? पास में कोई चीज भी तो नहीं है कि बेच सकूँ या गिरवी रख सकूँ।

सीताराम ने अभिमान से कहा—इसकी चिन्ता तुम क्यों करते हो ? मुझे बताओ, तुम्हें कितने रुपये चाहिये ?

भागवत—क्या तुम्हारे पास इतने रुपये हो गये हैं कि तुम उन्हें पानी में फेंकना चाहते हो ? यदि हाँ तो मुझे भी दस-बीस रुपये दे दो; किन्तु इतना याद रखना कि मैं रुपया शायद ही लौटा सकूँ।

सीताराम—भाई, इसकी चिन्ता तुम मत करो।

भागवत कुछ न बोला। वह चुपचाप तम्बाकू पीने लगा।

सीताराम धीरे-धीरे कहने लगा—राजा ने हम लोगों के साथ अन्याय करके हमारी रोटी छीन ली। हम लोग कहीं के न रहे।

भागवत—तुम ऐसा क्यों कहते हो ? तुम्हारे चेहरे से तो ऐसा नहीं मालूम होता।

सीताराम की ढींग से भागवत चिढ़ गया था। उसकी उदारता उससे सह्य न हुई थी।

सीताराम ने कहा—खैर, आज नहीं तो दस दिन के बाद रोटी मिलनी कठिन हो ही जायगा।

भागवत—राजा के अन्याय करने पर भी हम उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकते।

सीताराम—भाई, एक बात कहूँगा। युवराज के राज्य-सिंहासन पर बैठने पर यशोहर में रामराज्य हो जायगा। क्या पता हम लोग वह समय देख सकेंगे या नहीं।

भागवत ने चिढ़ कर कहा—तुम बड़े आदमी हो, तुम इन बातों की पञ्चायत किया करो। मैं गरीब हूँ, तुम्हारी बराबरी कहाँ तक कर सकता हूँ।

सीताराम—भाई, नाराज क्यों होते हो ? मेरी बात तो सुन लो। यह कह कर उसने धीरे-धीरे भागवत के कान में कुछ कहा।

भागवत और भी बिगड़ कर बोला—देखो सीताराम, मैं तुम्हें समझा देता हूँ फिर कभी ऐसी बात मेरे सामने जबान से न निकालना !

सीताराम सिटपिटा कर वहाँ से चला गया। भागवत चुपचाप बैठा न जानें क्या सोचता रहा। दूसरे दिन सबेरे ही वह सीताराम के पास पहुँच कर बोला—सीताराम, कल जो तुमने कहा था वह निस्संदेह ठीक था।

सीताराम ने प्रसन्न होकर कहा—भला तुमसे मैं झूठ बोलूँगा ?

भागवत—उसी विषय में तुमसे सलाह करने आया हूँ।

सीताराम और भागवत में कई दिनों तक सलाह होती रही। सलाह में यह तय हुआ कि एक जाली अर्ज़ी लिखी जाय जिसमें प्रतापादित्य पर विद्रोह का अपराध लगाते हुए युवराज स्वयं राज्यप्राप्ति की प्रार्थना बादशाह से कर रहे हों। अर्जी के नीचे युवराज द्वारा रुक्मिणी को दी गई अँगूठी की मोहर रहे। उस अँगूठीपर युवराज का नाम खुदा है।

निश्चय के अनुसार ही काम हुआ। अर्ज़ी तैयार हो जाने पर भागवत के हाथ उसे बादशाह के पास भेजना तय हुआ। सीताराम को मूर्ख समझ कर यह काम उसे न सौंपा गया।

भागवत अर्ज़ी लेकर दिल्ली की ओर न जाकर प्रतापादित्य के पास गया। प्रणाम करके उसने कहा—महाराज एक नौकर युवराज का यह पत्र लेकर दिल्ली जा रहा था। मुझे किसी तरह पता लग गया और मैंने उससे इसे छीन लिया। नौकर देश छोड़कर भाग गया। महाराज की सेवा में मैं इसे लेकर उपस्थित हुआ हूँ।

भागवत ने सीताराम का कोई जिक्र न किया। पत्र पढ़कर प्रतापादित्य की क्या अवस्था हुई, यह नहीं कहा जा सकता। किन्तु भागवत फिर अपनी नौकरी पर बहाल कर दिया गया।

—:❀:—

विभा आजकल हमेशा मनमारे बैठी रहती है। उसकी सम्पूर्ण आशाओं पर तुषारपात हो गया है। कहीं भी उसका चित्त नहीं लगता। नैराश्य रूपी महान्धकार ने उसे घेर लिया है। नाना प्रकार की भावनाएँ उसके हृदय को उद्वेलित किया करती हैं। किसी भी काम में उसका चित्त नहीं लगता।

एक दिन इसी तरह विभा बैठी चिन्ता-सागर में गोते लगा रही थी कि उसके कानों में 'दुलहिनजीकी जय हो' की आवाज पड़ी। उसके चौंककर सिर उठाया तो सामने राममोहन को हाथ जोड़े हुए खड़ा देखा। एक बार तो वह चकित हुई, किन्तु फौरन ही उसका हृदय आनन्द से भर उठा। आँखों में प्रेमाश्रु उमड़ आये। उसने हृदय को स्थिर करके गद्‌गद कण्ठ से पूछा—मोहन, तुम कैसे आ गये?

राममोहन ने हाथ जोड़कर कहा—मैंने सोचा कि जब माँ याद नहीं करती हैं तो मैं ही चलकर दर्शन कर आऊँ।

विभा ने राममोहन से बहुत कुछ पूछना चाहा, किन्तु उसके मुँह से एक भी शब्द न निकला। लज्जा से मानों उसका कण्ठ ही रुक गया। किन्तु चन्द्रद्वीप का समाचार जानने के लिये उसका चित्त व्याकुल हो उठा।

राममोहन ने विभा की ओर देखकर कहा—क्यों माँ, तुम इतनी उदास क्यों हो? बाल रूखे हो गये हैं। मुँह सूख गया है। तुम्हारी देख-भाल करने वाला यहाँ कोई नहीं है। चलो, अब अपने घर चलकर रहो।

राममोहन की बात सुनकर विभा की आँखों में आँसू भर आये। उसका हृदय इतने दिनों के बाद सम्मान पाने पर एक प्रकार की पूर्ण ग्लानि से भर आया। विभा के अश्रु देखकर

राममोहन से भी न रहा गया। उसकी आँखें भी डबडबा गयीं। उसने कहा—माँ, यह क्या कर रही हो ? ऐसे शुभ अवसर पर कहीं आँसू गिराये जाते हैं? प्रसन्न मन से हँसते हुए घर चलो।

रामचन्द्रराय के चले जाने के बाद रानी को इस बात की आशंका हुई कि रामचन्द्र विभा को छोड़ न दें। जब उन्हें मालूम हुआ कि राममोहन विभा को बुलाने आया है तो उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। उन्होंने राममोहन को बुलाकर दामाद का कुशल पूछा और बड़े प्रेम से उसे खिलाया। दूसरे ही दिन विभा के जाने की साइत निश्चित हुई। प्रतापादित्य ने भी इस विषय में असम्मति प्रकट न की।

सब तैयारी होने पर विभा उदयादित्य के पास गई। विभा को देखकर उदयादित्य ने चकित होकर पूछा—विभा, तुम अपने घर जा रही हो, यह सुन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम अपने घर की लक्ष्मी होकर सुख से रहो।

विभा उदयादित्य के पैरों से लिपटकर रोने लगी। उदयादित्य के नेत्रों से भी अश्रु निकल पड़े। उन्होंने विभा के मस्तक पर हाथ रखकर कहा—रोती क्यों हो ? यहाँ तुम्हें कौन-सा सुख था ? तुमने तो इस कारागार से छुटकारा पाया।

बिभा जब उठकर जाने लगी तब उदयादित्य ने कहा—अच्छा, जाओ, किन्तु स्वामी के यहाँ जाकर अपने इस अभागे भाई को भूल मत जाना। कभी-कभी याद करके अपना कुशल समाचार भेजती रहना।

वहाँ से विभा सीधे राममोहन के पास जाकर बोली—मैं अभी तुम्हारे साथ न जा सकूँगी।

राममोहन ने आश्चर्य से पूछा—क्यों, क्या हुआ माँ ?

विभा ने कहा—मैं भैया को छोड़कर कैसे जाऊँ ? उन्हें अकेला मैं नहीं छोड़ सकती। मेरे ही कारण उन्हें इतना कष्ट

सहना पड़ा और मैं उन्हें छोड़ दूं ! नहीं, ऐसा मैं नहीं कर सकती। उनको कष्ट में छोड़कर मैं सुख नहीं भोग सकती। मेरे चले जाने पर उनकी सेवा कौन करेगा ? कहते-कहते विभा का गला भर आया और रोती हुई वह वहाँ से चली गई।

रानी को जब मालूम हुआ कि विभा पति के यहाँ नहीं जाना चाहती तो उन्होंने उसे बहुत समझाया। विभा ने केवल यही कहा—नहीं माँ, मैं न जा सकूँगी।

रानी दुखित होतीं महाराज के पास गयीं और उनसे सब हाल कहा। महाराज ने बड़े ही शान्त भाव से कहा—यदि विभा नहीं जाना चाहती तो उसे जबरदस्ती क्यों भेजा जाय ?

रानी ने हताश होकर कहा—जो आप लोगों की इच्छा हो सो करें, मैं इन विषयों में कुछ न बोलूँगा।

उदयादित्य यह समाचार सुनकर बहुत विस्मित हुए। उन्होंने विभा को बहुत समझाया। विभा रोने लगी। उसने कुछ उत्तर न दिया।

अन्त में राममोहन ने उदास होकर विभा से कहा—माँ, क्या मैं लौट जाऊँ ? महाराज से जाकर मैं क्या कहूँगा ?

विभा कुछ न बोली। उसके नेत्रों में जल भरा था।

'अच्छा, तो चलता हूँ माँ' कहकर और विभा को प्रणाम करके राममोहन जाने लगा। विभा अब अपने को न रोक सकी और रो उठी। उसने अधीर होकर पुकारा—मोहन !

राममोहन लौटकर कहा—क्या है माँ ?

विभा ने कहा—महाराज से मेरी ओर से क्षमा माँगना और कहना कि उनके बुलाने पर भी मैं उनकी सेवा में न पहुँच सकी, यह मेरा दुर्भाग्य है।

राममोहनने बड़ी उदासीनता से 'जो आपकी आज्ञा' कहकर विभाको प्रणाम करके चला गया। विभा के हृदय का भाव राम-

मोहन न समझ सका, इस बात से विभा को बड़ा कष्ट हुआ। जो रामंमोहन उस पर सच्ची भक्ति रखता था वही आज उससे रूठकर चला गया। विभा जहाँ जाने के लिए इतने दिनों से लालायित थी वहाँ आज उसने स्वयं जाने से इनकार कर दिया। इन सब बातों से उसके हृदय में जो वेदना हुई उसका अनुभव उसी ने किया।

विभा ससुराल न जाकर भाई की सेवा में लगी रही। उसने अपने हृदय को वज्र बना लिया। उदयादित्य जब कभी स्नेहपूर्ण बातों से उसे हँसा देते हैं तो वह जरा मुसकुरा देती है; अन्यथा वह हमेशा एक कंकाल मात्र छाया के समान गृहस्थी के कामों में लगी रहती है। रानी की झिड़कियों को वह चुपचाप सह लेती है। उसकी बातों का कुछ भी उत्तर न देकर वहाँ से टल जाती है। कोई पूछता है—विभा, तू दिन पर दिन सूखी क्यों जा रही है, तो वह केवल मुसकुरा देता है।

इसी अवसर पर भागवत ने वह जाली अर्जी प्रतापादित्य को दिया। उन्होंने जल-भुनकर उदयादित्य को कैद करने की आज्ञा दी। मन्त्री ने उनसे कहा—महाराज, यह काम युवराज नहीं कर सकते। कोई भी इस पर विश्वास नहीं करता। सभी कहते हैं कि युवराज ऐसा कभी नहीं कर सकते। यह असम्भव है। मुझे भी ऐसा विश्वास नहीं होता।

प्रतापादित्य ने कहा—विश्वास तो मुझे भी अधिक नहीं होता। उसमें इतना साहस ही नहीं है; किन्तु यदि वह कुछ दिन कारागार में ही रहेगा तो क्या हानि होगा? उसे नजरबन्द के रूप में रक्खा जाय और किसी बात का कष्ट न दिया जाय। केवल किसी से मिलने न पावे और गुप्त रूप से कोई कार्य न कर सके, इसी बात पर ध्यान रखना होगा। इसके अतिरिक्त सब तरह का आराम उसे दिया जाय। द्वार पर पहरा हमेशा रक्खा जाय। मेरी आज्ञा का पूर्णतः पालन होना चाहिए।

२०

राममोहन माल चन्द्रद्वीप लौट आया और रामचन्द्र राय के सामने हाथ जोड़कर अपराधी की भाँति खड़ा हो गया। रामचन्द्र ने आश्चर्य से पूछा–राममोहन अकेले ही क्यों आये? विभा को क्यों नहीं लाये ?

राममोहन ने कहा–महाराज, अच्छी साइत में नहीं गया था। जाना व्यर्थ ही हुआ।

रामचन्द्र राय की सब आशाओं पर वज्रपात हो गया। विभा के आने पर प्रतापादित्त और उसके वंशजों को जलीकटी सुनाकर अपने क्रोध को शांत करने की आशा नष्ट हो गई। उन्होंने क्रुद्ध होकर कहा–तुम मूर्ख हो। मैंने तुम्हें पहले ही मना किया था। किन्तु उस समय तुमने छाती ठोककर कहा था कि उसे लेकर आओगे। लेकिन अब क्या हुआ ?

राममोहन ने सिर पीटकर कहा–यह इस भाग्य का दोष है, महाराज।

रामचन्द्र राय ने और अधिक बिगड़ कर कहा—गधे, तुमने मेरी बड़ी भारी बेइज्जती की। प्रतापादित्य के पास तुम मेरा नाम लेकर याचना करने गये और उसने ठुकरा दिया। ऐसा अपमान कभी न हुआ था !

राममोहन ने कुछ गर्व से कहा–महाराज, प्रतापादित्य यदि बाधा डालते तब तो मैं जबरदस्ती माताजी को ले आता। इस बात की तो मैंने प्रतिज्ञा ही की थी। मैं आपकी आज्ञा का पालन करने गया था। प्रतापादित्य से भय खाने वाला मैं नहीं हूँ। वे राजा हैं, किन्तु मेरे नहीं !

रामचन्द्र–तो फिर विभा को क्यों नहीं लाये।

राममोहन कुछ बोल न सका। रामचन्द्र के कई बार पूछने पर

उसने आँखों में जल भरकर कहा—महाराज, महारानी ने स्वयं आने से इनकार किया। कहते-कहते उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। जिस विभा पर उसका अटल विश्वास था कि वह कभी उसकी बात नहीं टालेगी उसीने उसकी बात को ठुकरा दिया। शायद इसी दुःख से वह अपने आँसू न रोक सका।

राजा एकदम चौंक उठे और आँखें फाड़कर कहा—अच्छा, ऐसी बात है! इसके बाद कुछ देर तक चुप रहकर फिर बोले—अच्छा, तुम मेरे सामने से फौरन चले जाओ। मैं तुम्हारा मुँह देखना नहीं चाहता।

राममोहन अपना दोष समझकर वहाँ से चला गया। उसके जाने के बाद रामचन्द्र राय का मन बदला लेने के लिए अधीर हो उठा। किन्तु प्रतापादित्य और विभा दोनों ही उनके कब्जे के बाहर थे।

धीरे-धीरे यह बात चारो ओर फैल गई। सभी अपने राजा के अपमान का बदला लेने के लिए उत्सुक थे। यह देखकर रामचन्द्र राय बड़े चिन्तित हुए। यदि बदला नहीं लिया जाता तो प्रजा क्या समझेगी। लोग परिहास करेंगे।

एक दिन दरबार में मन्त्री ने राजा से कहा—महाराज, आप दूसरा विवाह कर लें।

रमाई बोल उठा—और प्रतापादित्य की लड़की अपने भाई के पास रहे।

सेनापति ने कहा—मन्त्री ने ठीक कहा है। इसमें प्रतापादित्य और उनकी लड़की को अच्छी शिक्षा मिल जायगी।

रमाई ने आँखें नचाकर कहा—इस शुभ कार्य का निमन्त्रण अपने वर्तमान श्वसुर साहब को भी भेजिएगा, नहीं तो शायद वे नाराज हो जायँ!—यह सुन कर सभी लोग हँसने लगे। रामचन्द्र राय को भी हँसी आ गई।

रमाई ने फिर कहा —महाराज, फलदान के समय स्त्रियों में शामिल होने के लिए प्रतापादित्य की रानी को भी बुला लीजियेगा और उनकी बेटी के लिए 'मिष्टान्नमितरे जनाः' के अनुसार एक थाल मिठाई और दो कच्चे केले भेज दीजियेगा।

रमाई की इस बात पर राजा हँसते-हँसते लोट पोट हो गये। दरबारी लोग भी मुँह फेर कर हँसने लगे। सेनापति वहाँ से धीरे से खिसक गया।

कुछ देर के बाद जब शान्ति हुई तब विवाह के अन्य विषयों पर बात-चीत होने लगी। सब बात पक्की हो जाने पर सब लोग चले गये, किन्तु रामचन्द्र राय बैठे गुड़गुड़ा पीते हुए न जाने क्या सोचने लगे।

२१

राज भवन के पास के ही एक छोटे-से मकान में उदयादित्य कैद किये गये हैं। पहरे दार लोग घूम-फिर कर पहरा दे रहे हैं। मकानमें एक खिड़की भी है जिससे बँसवाड़ी और एक शिवाला दिखाई पड़ता है। सायंकाल के समय उदयादित्य उस मकान में लाये गये। वह खिड़की के पास ही पृथ्वी पर बैठ गये। वर्षा ऋतु होने के कारण आकाश मेघों से आच्छन्न है। चारो ओर निःस्तब्धता छाई हुई है। मार्ग पर दो-एक व्यक्ति कभी-कभी दिखाई पड़ जाते हैं। मार्ग में कहीं-कहीं जल इकट्ठा है। प्रहरियों की पद-ध्वनि निरन्तर आ रही है। धीरे-धीरे रात्रि अपना अञ्चल फैलाने लगी। चौकीदारों की पुकार दूर से सुनाई पड़ने लगी। उदयादित्य बैठे बँसवाड़ी की ओर जुगनुओं की जमात देख रहे हैं। उनके नेत्रों में निद्रा का नाम नहीं है। उसी खिड़की के पास बैठे वे प्रहरियों के चलने फिरने की आवाज बराबर सुनते रहे।

आज विभा को लोगों ने प्रश्न करके परेशान कर डाला है। सभी चारों ओर से पूछ रहे हैं—'क्या हुआ? क्या बात हुई?' उसके नेत्रों से बराबर आँसू टपक रहे हैं। लोग नाना प्रकार की टीका-टिप्पणियाँ कर रहे हैं। विभा उनके प्रश्नों का उत्तर देते-देते घबरा गई है, इसीलिए वह बगीचे की ओर चली आई है। रात्रि अधिक हो चली है। राजमहल के दीपक एक-एक कर सब बुझ गये। विभा बगीचे में एक वृक्ष के नीचे बैठी है। आज उसे जरा भी भय नहीं लगता है। ज्यों-ज्यों अन्धकार बढ़ता जा रहा है त्यों-त्यों उनके हृदय में अशान्ति बढ़ती जा रही है। उसे ऐसा जान पड़ता है मानों कोई उसे शान्ति और सुख से दूर खींच कर अन्धकार-सागर में लिये जा रहा है।

इस निर्जन स्थान में बैठा विभा मानों उन घने अन्धकार पर लिखे हुए अदृष्ट को पढ़ रही है। आँखों के आँसू सूख गये हैं। अपलक अन्धकार को देख रही है। रात्रि अधिक बीतने पर हवा कुछ जोर से चलने लगी और वृक्ष हिलने लगे। वृक्षों के हिलने की आवाज सुन कर विभा को ऐसा मालूम होने लगा मानो उसके स्नेह और हौसले बहुत दूर समुद्र-तट पर रुदन कर रहे हैं। विभा के पास वे आना चाहते हैं, किन्तु आने का मार्ग उन्हें दिखाई नहीं देता। विभा स्वयं उसके पास जाने का मानों प्रयत्न करने लगी, किन्तु न तो वह वहाँ तक पहुँच ही सकी और न उसे कोई दिखाई ही दिया। इसी प्रकार समस्त रात्रि विभा ने बिता दी। प्रभात का प्रकाश होने पर उसका चित्त कुछ स्थिर हुआ और वह राज महल में गई।

दूसरे दिन विभा ने उदयादित्य के पास जाने के लिए बड़ी चेष्टा की। उसे वहाँ जाने की मनाही थी। दिन भर वह रोती रही। अन्त में वह स्वयं प्रतापदित्य के पास गई। और उनके पैरों से लिपट कर उसने बड़ी प्रार्थना की। बहुत कहने-सुनने पर उसे

किसी प्रकार आज्ञा मिली। दूसरे दिन सुबह होते ही वह कैद-खाने में पहुची। वहाँ उसने देखा कि उदयादित्य जमीन पर बैठे खिड़की पर सिर रक्खे सो रहे हैं। विभा को मारे दुःख के रुलाई आ गई। किसी प्रकार चित्त को शान्त करके उदया-दित्य के पास धीरे-धीरे जाकर बैठ गई। देखते ही देखते सूर्य का प्रकाश चारो ओर फैल गया। राजमार्ग पर लोगों के आने-जाने की आवाज सुनाई पड़ने लगी। पहरेदार गाना गाकर रात्रि के जागरण की थकावट दूर करने लगे। मन्दिरों से शंख और घंटो की ध्वनि आने लगी। एकाएक उदयादित्य चौंककर जाग पड़े। विभा की ओर दृष्टि पड़ते ही बोले—विभा, तू यहाँ इतने सबेरे क्यों आई है ?—फिर लम्बी साँस लेकर कहा—आह, विभा तू आ गई ? कल दिन में तुझे न देख सका। मैंने तो समझा था कि अब तुम लोगों से भेंट न हो सकेगी !

विभाने आपने नेत्र पोंछकर कहा-भैया,तुम जमीनपर क्यों बैठे हो? चारपाई का बिछावन देखकर मालूम होता है कि तुमने उसपर पैर तक नहीं रक्खा है। क्या दो दिन से जमीन पर ही पड़े हो?

उदयादित्य ने धीरे-धीरे कहा—विभा, मुझे इस खिड़की के पास जमीन पर बैठने में ही आनन्द मिलता है। चारपाई मुझे अच्छी नहीं लगती। उस पर बैठकर मैं आकाश का मनोरम दृश्य नहीं देख पाता। यहाँ से जब मैं आकाश में उड़ते हुए पक्षियों को देखता हूँ तो मुझे मालूम होता है कि मैं भी उन्हीं के समान स्वाधीन हूँ। यहाँ से हटते ही मुझे चारो ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई देता है। मुझे ऐसा भास होने लगता है मानों अब मेरा यहाँ से उद्धार न होगा। अब मैं कभी इस बन्धन से मुक्त न हो सकूँगा। इस दो हाथ जमीन पर आते ही मुझे ऐसा ज्ञान होने लगता है मानों मैं पूर्ण स्वतन्त्र हूँ और कोई भी मुझे बाँध नहीं सकता।

आज विभा को अपने पास देखकर उदयादित्य को अपार आनन्द हुआ। उन्होंने दिन भर विभा को बैठाकर तरह-तरह की बातें की। शायद इसके पहले कभी इतनी अधिक बातें न की होंगी। विभा भी उदयादित्य के आनन्द का अनुभव कर रही थी। उसके शरीर में रोमाञ्च हो आया। आज उसे इस बात का अनुभव हुआ कि वह भी उदयादित्य को प्रसन्नता पहुँचा सकती है। आज तक वह उदयादित्य की सेवा करते हुए भी यह न समझ सका था कि वह उन्हें अपनी सेवा से सुख पहुँचा सकती है। वह अभी तक अन्धकार में पड़ी थी। कहीं भी उसे किनारा न दिखाई पड़ता था। निराशा ने उसे ऐसा दबा रक्खा था कि उसे कहीं भी प्रकाश की किरण न दिखाई देती थी। किन्तु आज उसके हृदय में कुछ-कुछ विश्वास और बल हुआ।

विभा नित्य सुबह होते ही उदयादित्य के पास आ जाती है और दिन भर वहीं रहती है। एक प्रकार से वह भी कारागार ही में रहने लगी। नौकरों को वह कोई काम न करने देती। अपने हाथ से उदयादित्य के लिए भोजन लाती और उनका कमरा साफ कर बिस्तर लगा देती। उसे इन कामों में बड़ा आनन्द मिलता था। उसने एक तोते का पिंजड़ा लाकर वहीं टाँग दिया था। उदयादित्य उसे बैठाकर महाभारत सुनाते। इतना सब होने पर भी उदयादित्य का हृदय शान्त नहीं था। एक चिन्ता सर्वदा उन्हें घेरे रहती थी। वे सोचते कि मैं तो विपत्ति के अगाध सागर में डूब ही रहा हूँ, किन्तु इस बेचारी नवविवाहित बालिका को क्यों अपने साथ डुबा रहा हूं? वे नित्य संकल्प करते कि आज विभा से कह देंगे कि वह अपने घर चली जाय, उनकी चिन्ता छोड़ दे, किन्तु जब विभा प्रातःकाल होते ही उनके पास आकर बैठ जाती, उनको प्रसन्न करने के लिए तरह-तरह की बातें करने लगती है, अपने प्रसन्न मुख को

उनकी ओर करके अपने हृदय के असीम वात्सल्य प्रेम को उढ़ेलने लगती है, तब वे मूक हो जाते हैं। उन्हें कुछ बोलने का साहस ही नहीं होता। इस प्रकार नित्य उनका किया हुआ संकल्प विभा के स्नेह के आगे अपूर्ण ही रह जाता है। अन्त में उन्होंने दृढ़ निश्चय करके विभा से कहा—विभा, तुम अब मेरी चिन्ता छोड़ दो अपने घर जाओ। जब तक तुम न जाओगी मुझे शान्ति न मिलेगी। रोज मानो मुझसे कोई आकर कहता है कि विभा को दूर कर दो नहीं तो वह संकट में पड़ जायगी। मैं तुम्हारे लिए शनि ग्रह हूँ। मेरे साथ विपत्ति घूमा करती है। मेरे संसर्ग में रहना अकल्याणकर है। इसलिए तुम अपने पति के घर जाओ। कभी-कभी तुम्हारा समाचार मिल जाने से ही मुझे सुख होगा।

विभा मौन रही। उससे कुछ भी न बोला गया। उसकी आँखों से अश्रुपात होने लगा।

उदयादित्य उसके हृदय के भाव को पढ़ने की चेष्टा करने लगे। उन्होंने समझ लिया कि कारागार से मुक्त होने के पहले विभा मुझे न छोड़ेगी। उसे दूर करना बड़ा ही कठिन है। किन्तु इस कारागार से मुक्ति पाने का भी तो कोई मार्ग नहीं दिखाई देता और न इसकी कोई अवधि ही है।

२२

प्रतापादित्य के दबाव डालने और उदयादित्य की सलाहके कारण ही विभा राममोहन के साथ नहीं आई, रामचन्द्र राय की यही धारणा थी। विभा के आने से इनकार करने के कारण उन्हें अपना बड़ा अपमान मालूम हुआ। उन्होंने सोचा—'जब प्रतापादित्य ने मेरा अपमान करने के लिए ऐसा किया है तो मैं भी क्यों न उससे बदला लूँ? मैं उन्हें एक पत्र लिख भेजूँ कि मैं अब

तुम्हारी लड़की को अपने यहाँ नहीं रख सकता, इसलिए अब तुम उसे कभी यहाँ भेजने की चेष्टा न करना।' इस विचार पर लोगों से सलाह करके उन्होंने पत्र तैयार कर डाला। यद्यपि प्रतापादित्य से बदला लेने का साहस उनमें न था, किन्तु बिना ऐसा किये उन्हें अपने अपमान का दूसरा प्रतिकार भी नहीं दिखाई देता था। लोगों के सामने उनकी बड़ी हेठी होती। इसी कारण वे एकाएक ऐसे दुस्साहस के कार्य में प्रवृत्त हो गये। पत्र तैयार हो जाने पर उन्होंने राममोहन को बुला कर कहा—राममोहन, तुम्हें यह पत्र लेकर यशोहर जाना होगा।

राममोहन ने हाथ जोड़ कर कहा—महाराज, क्षमा कीजिए। मैंने यशोहर न जाने की प्रतिज्ञा की है। हाँ, यदि आप मुझे दुलहिन जी को फिर लाने की आज्ञा दें तो मैं अपनी प्रतिज्ञा भी भंग कर सकता हूँ, अन्यथा मैं नहीं जा सकूँगा।

रामचन्द्रराय ने इस विषय में राममोहन से अधिक कुछ नहीं कहा। उन्होंने एक दूसरे भृत्य को बुला कर पत्र दे दिया। भृत्य पत्र लेकर यशोहर चला।

प्रतापादित्य के क्रोध से वह भृत्य परिचित था। उसने पत्र ले तो लिया किन्तु उसका हृदय काँपने लगा। उसने प्रतापादित्य को पत्र न देकर रानी को देना निश्चित किया। रानी आजकल बहुत व्याकुल रहा करती थीं। विभा और उदयादित्य के लिये वह सदा दुखी रहा करती थीं। उनका चित्त बड़ा ही चंचल रहा करता था। बैठी-बैठी अकसर रोया करती हैं। किसी काम में उनका मन नहीं लगता। एक अशान्तिसी छाई रहती है। ऐसे ही समय में उन्हें दामाद का पत्र मिला। पत्र पढ़कर वह और भी किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी हो गईं। विभा से इस विषय में कुछ कहना उचित नहीं; क्योंकि इसे सुन कर उसका हृदय और भी टूट जायगा, शरीर सूख जायगा। साथ ही महाराज से भी इस पत्र

की बात नहीं कही जा सकती। इसे सुनकर न जानें वह कौन सा अनर्थ कर डालें। इन्हीं बातों से वह घबरा उठी। कोई उपाय न देखकर रोते हुए लाचार होकर प्रतापादित्य के पास पहुँची और बोली—महाराज, विभा का कुछ प्रबन्ध करना होगा।

प्रतापादित्य ने कहा—कैसा प्रबन्ध ? क्या हुआ है ?

रानी—हुआ कुछ नहीं, किन्तु विभा को कभी न कभी ससुराल तो भेजना ही पड़ेगा ?

प्रतापादित्य—यह तो मैं भी जानता हूँ। किन्तु इतने दिनों पर आज यह बात तुम्हें कैसे याद पड़ी ? क्या कोई बात हुई है ?

रानी ने सम्हलते हुए कहा—आप व्यर्थ में ही शंका कर रहे हैं। मेरे कहने का अभिप्राय है कि यदि कुछ हो—

प्रतापादित्य ने बिगड़ कर कहा—होगा क्या ?

रानी ने सिसककर कहा—मान लीजिये यदि जामाता उसे छोड़ दें तो ?

प्रतापादित्य का क्रोध भड़क उठा। आँखें रक्त वर्ण हो गईं। शरीर काँपने लगा। उनका क्रोध देखकर रानी ने आँसू पोंछ डाला और कहा—मैं यह कहती हूँ कि यदि कहीं वह ऐसी ही बात लिख भेजें तो ? अभी तक उन्होंने कुछ नहीं लिखा है।

प्रतापादित्य ने कहा—जब ऐसा होगा तब उसका उचित उपाय करूँगा। अभी से इसकी क्या चिन्ता है ?

रानी ने रोकर कहा—महाराज आप मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान दें। मैं आपके पैरों पड़ती हूं ? मेरी इस एक बात को रख दीजिए। विचार कीजिए, यदि कहीं ऐसा हो गया तो विभा की क्या दशा होगी। उसके भविष्य पर ध्यान दीजिए। मेरा हृदय तो वज्र हो गया है जो इतना दुःख सहन करने पर भी नहीं फटा। आपने जो कुछ दुःख मुझे दिया है वह अपनी सीमा तक पहुँच चुका। मेरा बच्चा, मेरा हृदय, उदय कारागार में पड़ा

है। आपने उसे मामूली कैदी की तरह जेल में डाल दिया है। उसने आज तक कभी किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा। उसे न तो अपराध की समझ ही है और न वह राजकाज की ही किसी बात को समझता है। ईश्वर ने उसे जैसा बना दिया वैसा ही वह है। इसमें उसका क्या दोष?—कहते-कहते रानी का गला भर आया और वह जोर से रोने लगीं।

प्रतापादित्य ने उपेक्षा के भाव से कहा—ये बातें तो मैं कई बार सुन चुका हूं। जो बात कह रही थीं वही कहो।

रानी ने सिर पीटकर कहा—क्या कहूं? मेरा भाग्य फूट गया। बार-बार तो आपसे कहा किन्तु जब आप पर उसका कुछ असर पड़े तब तो? एक बार खुद ही विभा के मुँह की ओर देख कर उसकी दशा पर विचार कीजिए कि जो मैं कह रही हूं वह सच है या झूठ। वह किसी से कुछ नहीं कहती, किन्तु भीतर ही भीतर गली जा रही है। शरीर सूखकर काँटा हो गया है। उसके हृदय की व्यथा का अनुमान कीजिए तब आपको सब बातें स्पष्ट होंगी। यदि आप उसका कुछ उपाय न करेंगे तो कौन करेगा? मेरी विनती पर ध्यान देकर उसके भविष्य को बिगड़ने से बचाइए।

रानी ने जब देखा कि उनके कहने का कुछ भी प्रभाव प्रतापादित्य पर नहीं पड़ा तब वह चुपचाप वहाँ से चली गईं। प्रतापादित्य से और अधिक बोलने का साहस उन्हें न हुआ। अपने कमरे में जाकर वह पलंग पर गिर पड़ीं और तकिये में मुँह गड़ाकर रो करके अपने हृदय को हल्का करने का प्रयत्न करने लगीं।

२३

उदयादित्य के कैद किये जाने का समाचार जब सीताराम को लगा तब उसे रुक्मिणी के ऊपर बड़ा क्रोध आया। गुस्से में भरा हुआ वह रुक्मिणी के घर पहुँचा। जाते ही उसने उसे खूब जली-

कटी सुना कर फटकारा; यहाँ तक कि कई बार उसे मारने भी दौड़ा। उसने चिल्ला कर कहा—तू राक्षसी है, हत्यारिन है। मैं तेरे घर में आग लगा दूँगा, तुझे मिट्टी में मिला दूँगा और जिस तरह भी होगा युवराज को छुड़ाऊँगा। मैं अभी रायगढ़ जाता हूँ। वहाँ से आकर मैं तेरे काले मुँह को नोच डालूँगा। तेरे मुँह में कालिख और चूना पोत कर सारे नगर में घुमाऊँगा! फिर तुझे यहाँ से निकाल कर तब पानी पीऊँगा।

रुक्मिणी कुछ देर तक चुपचाप सीताराम की फटकार सुनती रही। फिर उसने दाँत पीसकर होंठ चबाये और दोनों मुट्ठी बाँध कर पैर पटका। उसकी आँखों से अंगारे बरसने लगे। शरीर काँपने लगा। इसके बाद उसके होंठ फड़कने लगे और सिर के बाल इधर-उधर छितरा गये। वह उस समय पिशाचिनी के समान दिखाई देने लगी। मानों उसका अभिशाप सीताराम के ऊपर गिरा ही चाहता है। हिंसा का प्रतिरूप बनकर थर-थर कांपने लगी। सीताराम फौरन बाहर चला गया। उसके जाने के बाद रुक्मिणी की मुट्ठियाँ ढीली हो गईं। होंठ का फड़फड़ाना और दाँत का कटकटाना बन्द हुआ। तब वह सँभल गई और बोली—हाँ रे सीताराम, युवराज के संकट की सबसे बड़ी चोट तेरे ही दिल पर पड़ी है न? मालूम होता है, युवराज तेरे खरीदे हुए हैं। तुझे यह यह नहीं मालूम कि युवराज मेरे ही हैं। मैं उन्हें जिधर चाहें उधर घुमा सकती हूँ। उनके ऊपर मेरा पूरा जोर है। तू मेरे युवराज को कारागार-मुक्त कराना चाहता है। जरा उन्हें छुड़ा तो मैं भी तुझे देखूँ। इसी तरह वह कुछ देर तक बकती रही।

सीताराम उसी दिन रायगढ़ चला गया। सायंकाल का समय था। बसन्तराय बरामदे में बैठे अस्त होते हुए सूर्य की ओर देख रहे थे। उनके हाथ में इस समय चिर-संगी सितार न था। वे अकेले ही बैठे निम्न पद गुन-गुना रहे थे —

जगत में एकाकी मैं रहता ॥
गया सभी जो रहा पास में, मौन बना सब सहता,
अपने सभी हुए चुप, कोई मुझसे ना कुछ कहता।
किसे पुकारूँ, जग सूना, ना पता किसी का चलता,
कुछ भी रहा पास नहिं मेरे, यही हृदय में खलता ॥

इसी समय खाँ साहेब ने आकर एक लम्बा सलाम किया और अदब से थोड़ी ही दूर बैठ गये। वसन्तराय ने प्रसन्न होकर खाँ से कहा—आओ भाई, आओ! कहो कैसी तबीयत है? इतने उदास क्यों मालूम पड़ते हो?

खाँ साहेब—महाराज, तबीयत का हाल क्या पूछते हैं? आप की खुशी से मेरी खुशी और आपके रञ्जसे मेरा रञ्ज है। आप को उदास देखकर मैं कैसे प्रसन्न हो सकता हूँ? अब तो मेरे लिए इस दुनियाँ में जो कुछ हैं सो आप ही हैं। आप को प्रसन्न न देखकर मेरे हृदय में जो दुःख होता है उसे मैं ही जानता हूं। आप का उदासीन मुख मेरे लिए असह्य हो जाता है।

वसन्तराय ने व्यग्र भाव से कहा—खाँ साहेब, आप क्या कहते हैं? मैं तो प्रसन्न हूं। मुझे कोई भी कष्ट नहीं है? मैं तो अपने सुख में दिन-रात सुखी रहता हूं, आनन्द में मग्न रहकर समय बिताया करता हूं। तुमने मेरी कौन सी उदासीनता देखी?

खाँ साहेब-महाराज, जिस तरह पहले आप गाया-बजाया करते थे और हरदम खुश रहा करते थे वैसा अब नहीं है।

वसन्त राय कुछ रुककर बोले—मेरा गाना सुनना चाहते हो? सुनो—

'जगत में एकाकी मैं रहता।'

खाँ साहेब ने कहा—आप का वह सितार अब नहीं दिखाई देता। न जाने क्या हुआ?

वसन्तराय ने जरा सा हँसकर कहा-सितार अभी है। वह कहीं

खोया नहीं। किन्तु उसके सब तार टूट गये हैं, इसीलिए उसे रख दिया है। यह कहकर वह दृष्टि फेरकर मस्तक पर हाथ फेरने लगे।

कुछ देर के बाद वसन्तराय ने फिर कहा—खाँ साहेब, तुम कोई गीत गाओ। एक गीत जरूर सुनाओ।

खाँ ने एक बेतुकी कव्वाली सुनाया। वसन्तराय उसके गाने से मस्त हो उठे। उठकर खड़े हो गये और ताल देने लगे। गाते-गाते अँधेरा हो चला। चरवाहे अपने-अपने घर लौटने लगे। इसी समय वहाँ सीताराम आ उपस्थित हुआ और 'महाराज की जय हो' कहकर प्रणाम करके खड़ा हो गया। वसन्तराय उसे देखकर एकदम चकित हो गये। गाना बन्द हो गया। उन्होंने फौरन सीताराम के पास जाकर पूछा—कहो सीताराम, अच्छी तरह तो हो? उदयादित्य और विभा का क्या हाल है? सब कुशल तो है?

खाँ साहब उठकर चले गये। सीताराम ने कहा—महाराज, मैं एक-एक कर सभी बातें बतलाता हूँ। यह कहकर उसने सब हाल कह सुनाया। किन्तु उदयादित्य के कैद किये जाने का मुख्य कारण छिपाया।

वसन्तराय के सिर पर मानों वज्र टूट पड़ा। वे एकदम स्तम्भित हो गये। भौंहें ऊपर तन गईं। चकित होकर उन्होंने सीताराम का हाथ पकड़ लिया। स्थिर दृष्टि से उन्होंने उसकी ओर देखकर कहा—अयँ! यह तुम क्या कह रहे हो?

सीताराम ने कहा—महाराज, मैं बिलकुल सत्य कह रहा हूँ।

वसन्तराय ने फिर पूछा—सीताराम, उदयादित्य इस समय कहाँ हैं?

सीताराम—अभी वे कारागार में ही हैं।

वसन्तराय चिन्ता-सागर में डूब गये। अपने मस्तक पर हाथ फेरने लगे। उदयादित्य के जेलखाने में होने की बात उन्हें जँचती नहीं थी। कुछ बुद्धि भी काम नहीं दे रही थी। क्या करें, क्या न

करें इसी विचार में डूबने-उतराने लगे। कुछ देर के बाद उन्होंने सीताराम का हाथ पकड़कर कहा—सीताराम !

सीताराम—हाँ महाराज !

वसन्तराय—कैद होने के बाद उदयादित्य क्या करते हैं ?

सीताराम—और क्या करेंगे ! कारागार में ही पड़े रहते है।

वसन्तराय—क्या सब उनके विपक्ष में हो गये हैं ? सबने उन्हें बन्द कर रक्खा है ?

सीताराम—जी हाँ।

वसन्तराय—कारागार में वे अकेले ही रहते हैं क्या ?

वसन्तराय ये सब किसी से पूछ नहीं रहे थे। वे आप ही आप आश्चर्य में आकर कह रहे थे। सीताराम ने यह नहीं समझा। उसने फिर कहा—हाँ महाराज ?

वसन्तराय ने कहा—भाई, तुम मेरे पास आकर बैठो। तुमको शायद किसी ने पहचाना नहीं।

सीताराम जरा और उनकी ओर खिसक गया।

दूसरे ही दिन वसन्तराय यशोहर के लिए रवाना हो गये।

—:※:—

२४

यशोहर पहुँचकर वसन्तराय ने प्रतापादित्य के पास जाकर बड़े ही नम्र स्वर में कहा-प्रताप, तुम्हें क्या हो गया है ? उदय को इतना कष्ट क्यों देते हो ? उसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? यदि तुम उससे प्रेम न करते हो और वह तुम्हारा अपराध किया करता हो तो उसे इस बूढ़े को सौंप दो। उसे अपने साथ ले जाकर ऐसी जगह रक्खूगा कि फिर वह तुम्हारे सामने कभी न आये।

प्रतापादित्य चुपचाप वसन्तराय की बातें सुनते रहे, अन्त में घबराकर बोले—चचा जी, मैंने जो कुछ किया है, खूब अच्छी

तरह सोच-समझ कर किया है। इस विषय में आप बहुत कम जानते हैं। आप उसके प्रति विशेष अपनत्व दिखा रहे हैं। मैं व्यर्थ की बातें नहीं सुनना चाहता।

बसन्तराय प्रतापादित्य के पास खिसककर और उनका हाथ पकड़कर बड़े ही प्रेमपूर्ण स्वर में बोले—प्रताप, क्या तुम अपने बचपन की सब बातें भूल गये ? मैंने तुम्हें गोद में खिलाकर बड़े यत्न के साथ पाल-पोसा, क्या तुम्हें वे बातें याद नहीं हैं ? स्वर्गीय भाई साहेब ने अन्तिम समय तुम्हें मेरे हाथों में सौंपा था, उस समय से क्या मैंने कभी तुम्हें कोई कष्ट होने दिया था ? पिता का वियोग क्या तुम्हें मालूम होने पाया ? फिर ऐसा कौन सा अपराध मैंने किया कि तुम मुझे इस तरह कष्ट देते हो ? मेरे कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि तुम्हें पालकर मैंने तुम्हारे ऊपर उपकार किया है; बल्कि वह तो मैंने अपने भ्रातृ-स्नेह के ऋण का परिशोध किया है। अतः मैं उसका कुछ बदला तुमसे नहीं चाहता और न कभी तुमसे कुछ लिया है। किन्तु इस समय मैं तुमसे भीख माँग रहा हूँ। क्या तुम मुझे जरा-सी भीख भी न दोगे ? मेरी याचना को क्या ठुकरा दोगे !

उपरोक्त बातें कहते-कहते वसन्तराय की आँखों से आँसू गिरने लगे। प्रतापादित्य चुपचाप, निश्चल पाषाण-मूर्तिवत बैठे रहे।

वसन्तराय ने गला सफा करके फिर कहना शुरू किया-बेटा प्रताप, क्या तुम मेरी प्रार्थना पर ध्यान न दोगे ? इस बूढ़े पितृत्व चाचा को भीख देकर इसकी लज्जा रख लो ! मेरी बात का कुछ उत्तर भी न दोगे क्या ? अच्छा, मेरी एक छोटी सी मांग पूरी कर दो। उदय से भेंट करना चाहता हूं। तुम आज्ञा दे दो कि मुझे उदय के पास जाने से कोई रोके नहीं।

वसन्तराय की इस प्रार्थना को भी प्रतापादित्य ने स्वीकार न किया। उदयादित्य के ऊपर वसन्तराय को इतना अधिक स्नेह

प्रकट करते देखकर वे और भी चिढ़ गये। लोग उन्हें अपराधी समझते हैं इस बात को सोचकर उन्हें और अधिक क्रोध होता था।

वसन्तराय निराश हो गये। उदास होकर वे हवेली में विभा के पास गये। उनका म्लान मुख देखकर विभा के हृदय में बड़ा कष्ट हुआ। उसने उन्हें हाथ पकड़कर चौकी पर बैठाया और उनके आगे पान-इलायची लाकर रख दिया। वसन्तराय ने उससे कहा—विभा, अब मेरा मुँह तुम्हारे हाथ का पान खाने लायक नहीं रहा। जब मैं पान खाने योग्य था तब तुम लगाने लायक न थीं। अब इस बिना दाँत के मुँह में पान रखने से क्या लाभ?

वसन्तराय की बात से विभा का मुख मलीन हो गया। उसके नेत्र भर आये। उसकी इस दशा को देखकर वसन्तराय ने फौरन कहा—क्यों विभा, कुछ देर के लिए क्या तुम अपने दाँत उधार दे सकती हो? पान चबाकर तुम्हारे दाँत लौटा दूंगा। यह कहकर उन्होंने दो बीड़ा पान खा लिया।

विभा हँस पड़ी। उसने कहा—दादाजी, आप के बाल भी सब पक गये। आप हमेशा के लिए मेरे बाल और दाँत ले लीजिए।

इतने ही में एक लौंड़ी ने आकर कहा—रानी आप को एक बार प्रणाम करना चाहती हैं।

वसन्तराय उठकर रानी के कमरे की ओर गये और विभा कैदखाने की तरफ उदयादित्य के पास चली गई।

वसन्तराय को उचित आसन देकर रानी ने प्रणाम किया। वसन्तराय ने आशीर्वाद दिया—चिरञ्जीविनी हो।

रानी ने कहा—चाचा जी, ऐसा आशीर्वाद न दीजिए। अब मैं अधिक जीना नहीं चाहती।

वसन्तराय ने आश्चर्य से कहा—राम-राम! ऐसा क्यों कहती हो।

रानी ने कहा—चाचा जी, अब और जीकर क्या करूँगी। मेरे घर पर तो शनि की दृष्टि पड़ गई है।

वसन्तराय ने कुछ न कहा। वे बड़े व्याकुल हो उठे।

रानी फिर कहने लगीं—विभा का कष्ट मुझ से नहीं देखा जाता। वह किसी से कुछ नहीं कहती। दिन पर दिन वह सूखती जा रही है। कुछ समझ में नहीं आता कि उसके लिए क्या उपाय करूँ। यह कहकर उन्होंने एक चिट्ठी उनके हाथ में देते हुए कहा—जरा इसे पढ़कर देखिए।

वसन्तराय पत्र पढ़ने लगे और रानी कहती गयीं—मेरे भाग्य में क्या सुख है? मेरा उदय मुझसे छीनकर जेल में डाल दिया गया है। मैं उससे मिलने भी नहीं पाती। महाराज तो उसे राजकुमार समझते ही नहीं।

उदयादित्य के सम्बन्ध का कष्ट आजकल रानी के हृदय में हर समय बना रहता है।

पत्र पढ़कर वसन्तराय अवाक् हो गये। वे चुपचाप चिन्तामग्न होकर माथे पर हाथ फेरने लगे। कुछ देर के बाद उन्होंने पूछा—इस पत्र को और तो किसी ने नहीं देखा?

रानी—महाराज इसे देखकर न जाने क्या अनर्थ कर डालते? और विभा भी क्या कभी इसे पढ़कर जीवित रह सकती?

वसन्तराय ने जरा सन्तोषकी साँस लेकर कहा—बहुत अच्छा किया। किन्तु, बहू! तुम विभा को फौरन उसके घर भेज दो। मान-अपमान की चिन्ता न करो। इसी में कुशल है।

रानी—मेरा भी यही विचार है। मुझे मान-अपमान से क्या मतलब? मेरी विभा सुख से रहे, इसीमें मुझे अपार आनन्द है। मैं अपनी मान-मर्यादा इसी में समझती हूँ। केवल मुझे इसी बात का भय लगता है कि कहीं वे लोग बाद में उसे दुःख न दें। मेरी बच्ची से महाराज के व्यवहार का बदला न लें।

वसन्तराय—नहीं बहू, ऐसा नहीं हो सकता। विभा क्या दुःख की पात्र है? वह तो जहाँ कहीं भी जायगी वहीं उसका आदर होगा। मेरी विभा लक्ष्मी है। उसके ऐसा शान्त रूप तो मैंने कहीं देखा ही नहीं। रामचन्द्र राय उसके साथ कभी अनुचित व्वहार न करेंगे। उन्होंने तुम लोगों के ऊपर क्रोध करके यह पत्र लिख दिया है। किन्तु विभा को भेज देने से ही उनका क्रोध शान्त हो जायगा। मेरी बात मान कर तुम

२०

विभा को जल्दी ही चन्द्रद्वीप भेज दो

सन्ध्या के समय वसन्तराय राजमहल के बाहर अकेले बैठे कुछ सोच रहे हैं। इसी समय सीताराम ने आकर उनको प्रणाम करके कहा—महाराज, आप मेरे साथ फौरन चलिए।

वसन्तराय ने पूछा—क्यों, क्या बात है? इतने घबराये क्यों हो?

सीताराम—यह पीछे बतलाऊँगा, अभी आप मेरे साथ चलें।

वसन्तराय ने फिर पूछा—कहाँ चलना होगा?

सीताराम ने धीरे से उनके कान में कुछ कहा। वसन्तराय ने चकित होकर पूछा—क्या सच कहते हो?

सीताराम—जी हाँ अब विलम्ब न कीजिये।

वसन्तराय—एक बार विभा से मिल लूँ?

सीताराम—जी नहीं, समय एकदम नहीं है।

वसन्तराय—कहाँ चलना होगा?

सीताराम—आप मेरे साथ चले आइए, मैं खुद ले चलता हूँ।

वसन्तराय ने उठकर कहा—एकबार विभा से भेंट कर लेने से क्या देर हो जायगी?

सीताराम—नहीं महाराज! अब आप कहीं न जाइए। देर होने से सब बनी-बनाई बात बिगड़ जायगी।

वसन्तराय ने चलते हुए कहा—तो चलो, विभा से भेंट न करूँगा। यह कहकर सीताराम के साथ चल दिये।

कुछ दूर जाकर वसन्तराय ने फिर कहा—क्या थोड़ी देर होने से भी काम बिगड़ जायगा ?

सीताराम—महाराज, विलम्ब होने से हम विपत्ति में पड़ जायँगे।

इसके बाद बसन्तराय दुर्गा माता का स्मरण करते हुए महल के बाहर हो गये।

उदयादित्य को वसन्तराय के आने का समाचार ज्ञात न था। विभा ने भी उनसे कुछ नहीं कहा। उसने सोचा, जब दोनों आदमियों में मुलाकात हो ही नहीं सकती तो उनसे यह संवाद कहना ही व्यर्थ है। इससे उदयादित्य के हृदय में दुःख ही होता। आज विभा सुबह भी कुछ देर करके उदयादित्य के पास आई थी और शाम को भी कुछ जल्दी ही चली गई। विभा आज अन्य दिनों की अपेक्षा कुछ अधिक उदास और चिन्तित भी थी। उसके इस भाव का कारण उदयादित्य सोचने लगे। नाना प्रकार के तर्क-वितर्क उनके हृदय में उठने लगे। उन्होंने सोचा, विभा का हृदय मेरी ओर से फिर तो नहीं रहा है ? उसकी यह विरक्ति क्यों है? इस शून्य कारागार में पड़े हुए मुझ अभागे की सेवा करते-करते शायद वह ऊब गई है ! क्या उसने मुझे अपने सुख का कण्टक समझ लिया है ? अवश्य ही मेरे कारण उसका सुख नष्ट हो गया है। आज वह विलम्ब से आई और शीघ्र ही चली भी गई। कल शायद इससे भी देर में आवे। दो-चार दिन के बाद शायद मुझे दिन भर बैठकर उसका मार्ग देखना पड़े। उसकी प्रतीक्षा में ही सुबह से दोपहर, दोपहर से शाम और शाम से रात हो जायगी, किन्तु फिर भी विभा न आवेगी। फिर शायद विभा मेरे पास कभी आवेगी भी नहीं।

उपरोक्त विचारों से उदयादित्य का हृदय उद्विग्न हो उठा, वे अधीर हो उठे। उन्होंने नाना प्रकार की कल्पनायें कर डालीं। बड़े ही भयानक दृश्य उन्हें दिखाई देने लगे।

इसी समय बाहर से लोगों के चिल्लाने की आवाज आई—आग लगी, आग लगी। बड़ा कोलाहल मच गया। सैकड़ों मनुष्य एक स्वर से चिल्लाने लगे। छत पर लोगों के दौड़ने की आवाज आने लगी। उदयादित्य का हृदय काँप उठा। उन्होंने समझा कि बाहर ड्योढ़ी के पास कहीं आग लग गई है। बहुत देर तक इसी तरह कोलाहल होता रहा। उदयादित्य एकदम घबरा गये। इतने में ही उनके कारागार का द्वार एकाएक खुला और एक आदमी भीतर आता हुआ दिखाई पड़ा। उन्होंने चौंककर पूछा—कौन है?

आगन्तुक ने कहा—मैं सीताराम हूँ, आप फौरन बाहर चलें।

उदयादित्य ने पूछा—क्यों, क्या बात है ?

सीताराम ने कहा—युवराज जी, कारागार में आग लग गई है। आप शीघ्र ही यहां से निकल चलें। वह युवराज का हाथ पकड़कर खींचता हुआ उन्हें कारागार से बाहर ले गया।

आज बहुत दिनों के बाद उदयादित्य बाहर खुली हवा में आये। उन्होंने एक बार अपने चारों ओर और ऊपर आकाश की तरफ देखा। बाहर के शीतल पवन ने मानों अपने हाथों को फैलाकर उनका आलिंगन किया। थोड़ी देर तक वे आकाश-मण्डल की शोभा निहारते रहे। इतने दिनों शून्य कारागार में पड़े रहने के कारण अवरुद्ध दृष्टि मानों खुल गई। आकाश में चमकती हुई, असंख्य नक्षत्रावलियों के नीचे, हरी-हरी घासों से पूर्ण विस्तृत मैदान में अपने को पाकर उन्हें एक प्रकार का असीम आनन्द हुआ। मुरझाई हुई हृदय की कलिका एक बार मानों हरी हो गई। कुछ देर तक उस अद्भुत आनन्द का अनुभव कर उन्होंने सीताराम से पूछा—सीताराम, अब क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ?

सीताराम ने कहा—आप मेरे साथ चले आइये।

युवराज उसके पीछे साथ-साथ चले।

—:※:—

२६

युवराज को लिऐ हुए सीताराम नहर के पास पहुँचा। नहर के किनारे एक नौका बँधी थी। उसी नौका के पास जाकर दोनों व्यक्ति खड़े हुए। इन्हें देखते ही एक आदमी नाव के बाहर आकर बोला—मेरे उदय! तुम आ गये? उदयादित्य उस स्वर को सुन-कर एक दम चौंक उठे। यह तो उनका वही चिर-परिचित स्वर है। इस स्वर को सुन कर उनके हृदय में जो आनन्द होता है, जितना सुख इसमें निहित है उसको युवराज वाणी से व्यक्त नहीं कर सकते। कैदखाने में पड़े-पड़े रात्रि में स्वप्नावस्था में कभी-कभी इसी मधुर स्वर को सुन कर वे चौंक उठते थे। यह स्वर यहाँ कैसे सुन पड़ा। इतने ही में वसन्तराय ने आकर उन्हें गले लगा लिया। दोनों ही व्यक्तियों के नेत्रों में आँसू उमड़ आये। दोनों का हृदय आनन्द से गद्गद् हो उठा। वहीं जमीन पर दोनों बैठ गये। कुछ देर के बाद युवराज ने कहा—दादाजी!

वसन्तराय ने कहा—हाँ बेटा! फिर दोनों चुप हो गये।

बहुत देर के बाद उदयादित्य ने एक बार ऊपर आकाश-मण्डल की ओर देखा। फिर वसन्तराय की ओर देख कर बोले—दादाजी, आज मुझे स्वाधीनता और आपके दर्शन दोनों एक साथ ही मिले हैं। अब मुझे कुछ न चाहिए। किन्तु न जानें यह सुसमय घड़ी कब तक रहेगी?

वसन्तराय प्रेम-विह्वल हो रहे थे। उनसे कुछ भी न बोला गया।

कुछ देर के बाद सीताराम ने हाथ जोड़कर कहा—युवराज, अब देर न कर नौका पर सवार हो जाइए।

उदयादित्य ने चकित होकर पूछा—क्यों ? नौका पर किसलिए सवार होऊँ।

सीताराम—युवराज, कुछ देर में पहरेदार लोग यहाँ आ जायँगे तो बड़ी गड़बड़ी होगी।

उदयादित्य ने बसन्तराय से पूछा—दादाजी, क्या हम लोग भाग रहे हैं ?

बसन्तराय ने उदयादित्य का हाथ पकड़ कर कहा—हाँ, बेटा, मैं तुम्हें चुराकर भाग रहा हूँ। इस देश के लोगों के शरीर में पत्थर का कलेजा है। ये लोग प्रेम करना नहीं जानते। तुम्हारे साथ इन लोगों ने जो निष्ठुरता की है उसे स्मरण कर मेरा हृदय फटने लगता है। मैं तुम्हें अपने हृदय में छिपाकर रक्खूँगा। तुम्हें वहाँ कोई कष्ट न होने दूंगा। यह कह कर उन्होंने युवराज को खींच कर अपनी छाती से लगा लिया। मानों उन्हें इस निष्ठुर संसार से हटा कर अपने मधुर स्नेह के साम्राज्य में छिपा कर रखना चाहते हों।

उदयादित्य ने कुछ देर तक सोच कर कहा—नहीं दादाजी, मैं भाग कर नहीं जा सकता !

बसन्तराय—ऐसा क्यों कहते हो ? बेटा, इस बूढ़े को भूल गये क्या ?

उदयादित्य ने कहा—नहीं दादाजी, ऐसा भी कभी हो सकता है ? खैर, मैं एक बार पिताजी के पास जाकर उनके चरणों पर गिर कर रोऊँगा और रायगढ़ जाने की आज्ञा माँगूँगा। शायद वे मेरी प्रार्थना स्वीकार कर लें।

बसन्तराय ने घबरा कर कहा—नहीं, नहीं ! वहाँ मत जाओ। वहाँ जाने से कोई लाभ न होगा।

उदयादित्य ने दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—अच्छा, तो फिर कारागार ही में लौट जाता हूँ।

वसन्तराय ने उनका हाथ पकड़कर कहा—कैसे जाओगे; मैं नहीं जाने दूंगा।

उदयादित्य ने कहा—दादाजी, आप इस भाग्यहीन का हाथ क्यों पकड़ रहे हैं! मेरे संसर्ग से आप के ऊपर भी आफत आ सकती है। मैं जहाँ रहूँगा वहीं अशान्ति रहेगी।

वसन्तराय ने दुःखित होकर कहा—बेटा केवल तुम्हीं तो कारागार का कष्ट नहीं भोग रहे हो। तुम्हारे साथ-साथ विभा भी तो वैसी ही यन्त्रणा सह रही है। क्या उसकी यह उम्र दुःख सहने की है? उसने अपने सम्पूर्ण सुखों को त्याग दिया है।

उदयादित्य ने फौरन कहा—हाँ दादाजी, आप ठीक कहते हैं। मैं आप के साथ चलूँगा। किन्तु मैं तीन पत्र राजमहल में भेजना चाहता हूँ।

सीताराम ने कहा—आप नौका में चलें। वहाँ कागज-कलम सब कुछ है। या ठहरिए मैं यहीं लिये आता हूं; किन्तु जरा शीघ्रता कीजिए। समय अब नहीं है।

उदयादित्य ने उसी समय तीन पत्र लिखे। एक पिता को लिखकर अपने अपराधों की क्षमा माँगी। दूसरा माँ को लिखा—माँ तुम्हारे गर्भ में रहकर और आज तक मैंने तुम्हें केवल दुःख ही दिया है। तुमने मेरा कोई भी सुख न जाना। तुम मेरी चिंता न करना। मैं दादाजी के साथ जा रहा हूं। वहाँ मैं सुख से रहूँगा। तीसरा पत्र विभाको लिखा—विभा, तुम्हारा सौभाग्य अचल हो। तुम्हारे लिए मेरी यही कामना है कि तुम पतिके घर जाकर आनन्द से रहो। अपना सुखमय संसार बसाकर सब चिंताओं को भूल जाओ। इससे अधिक मैं तुम्हें और क्या लिख सकता हूं।

सीताराम ने उन तीनों पत्रोंको एक मल्लाहके द्वारा भिजवा दिये। सब लोग नौका पर बैठ ही रहे थे कि एक आदमी दौड़ता हुआ उन्हींकी ओर आता दिखाई पड़ा। सीताराम उसे देखकर

चौंक उठा और बोला—अरे! यह तो वही पिशाचिनी है! इतने ही में रुक्मिणी उन लोगों के पास आ पहुँची। सिर के बाल इधर-इधर बिखरे हुए थे। शरीर का वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहा था। छाती पर का आँचल अलग हट गया था। आँखों से अग्नि के शोले टपक रहे थे। उसके हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी। पूर्णरूप से अपना बदला न चुका सकने के कारण उसका क्रोध भी बढ़ रहा था। जिसे सामने देखती उसीको टुकड़े-टुकड़े करके मानों वह अपनी क्रोधाग्नि शान्त करना चाहती थी। उसने आते ही सिंहनी के समान उदयादित्य पर झपटना चाहा। सीताराम फौरन बीच में आ गया। अब उसने अपना गुस्सा सीताराम के ऊपर उतारा और उसे खूब जोर से पकड़ कर दबाने लगी। सीताराम चिल्ला उठा। नाव पर के मल्लाह दौड़ आये। उन लोगों ने जबरदस्ती रुक्मिणी को पकड़कर अलग किया। कुछ वश न चलने पर रुक्मिणी बालों को स्वयं नोचती हुई चिल्लाकर बोली—मैं अपनी जान दे रही हूं, इसका पाप तुम लोगों को होगा। उसके शब्द चारो ओर गूँज उठे और उसी समय वह जल में कूद पड़ी। बढ़े हुए नहर के जल में वह कहाँ बहकर चली गयी, कुछ पता न चला। सीताराम ने अपने कन्धे से बहते हुए खून को धोकर पट्टी बाँधी। इसके बाद वह उदयादित्य के पास गया। उसने देखा, अचेत-से हो गये हैं। वसन्तराय भी हत बुद्धि हो रहे हैं। उन्हें नाव पर चढ़ाकर उसने मल्लाहों को नाव खोलने की आज्ञा दी। नाव खुल जाने पर सीताराम ने कहा—यात्रा के समय यह अशुभ न जाने कहाँ से आ गया।

—:※:—

२७

उदयादित्य की नौका को नदी तक पहुंचा कर सीताराम शहर लौटा आया। वह युवराज की तलवार अपने साथ लेता आया। जिस आदमी को उसने युवराज की तीनों चिट्ठियाँ देकर पहले भेज दिया था उसे एकान्त में समझा दिया था कि वह उन्हें किसी को न दे। अतः सीताराम पहले ड्योढ़ी पर पहुँचा और उसने उस आदमी से तीनों पत्र ले लिये। रानी और विभा की चिट्ठियों को अपने पास रख लिया और प्रतापादित्य की चिट्ठी को फाड़ कर आग में जला दिया।

अग्नि का वेग बहुत बढ़ गया था। उदयादित्यके सूने कारागार में आग घुस चुकी थी। खिड़की, दरवाजे, चौखट आदि जलकर भस्म हो चुके थे। बड़ा ही भयंकर दृश्य उपस्थित था। पहले लोगों को यह विश्वास न था कि उस कारागार में भी आग पहुच सकती है। यही कारण था कि लोगों का ध्यान उस ओर पहले न गया। सीताराम ने अच्छी तरह देखा कि आग पूर्ण रूप से कारागार में घुस गई है और अधिकतर अंश भस्म हो चुका है। उसने फौरन् मौका देख कर एक मुर्दे की खोपड़ी, कुछ हड्डियाँ और उदयादित्य की तलवार कारागार में फेंक दी।

दूसरी तरफ लोग पहरेदारों की कोठरियों की आग बुझाने में लगे थे। उनको इस बात का पता ही न था कि युवराज के कारागार में भी आग लग चुकी है। अकस्मात उनमें से एक आदमी की दृष्टि उस ओर गई और वह दौड़ता हुआ उन लोगों के पास आकर बोला—अरे दादा, युवराज की कोठरी में भी आग लग गई है! यह सुनते ही सबके होश उड़ गये। सब के सब एकदम घबरा उठे।

पहरेदारों के नायक दयालसिंह के हाथसे पानी का घड़ा गिर पड़ा। वह अपना सब सामान फेंक कर उसी तरफ दौड़ा। इसी समय एक दूसरे आदमी ने आकर कहा—कैदखाने के भीतर से युवराज के चिल्लाने की आवाज आ रही है। एकाएक सीताराम भी वहाँ आ पहुँचा। उसने आते ही चिल्लाकर कहा—अरे भाई, तुम लोग यहाँ खड़े हो! वहाँ युवराज के कमरे की छत टूटकर गिर पड़ी है। चारो ओर आग धधक रही है। कहीं से भीतर जाने का रास्ता नहीं है। सीताराम की बातें सुनकर उन लोगों ने आपस में एक दूसरे पर दोष लगाना शुरू किया। किसकी गलती से ऐसी दुर्घटना हुई यही निर्णय सब करने लगे। बात बढ़ गई, आपस में ही सब झगड़ गये। खूब गाली-गलौज होने लगी। यहाँ तक झगड़ा बढ़ा कि मार-पीट होने की नौबत आ गई।

सीताराम ने सोचा कि कारागारमें आग लगने से युवराज जलकर मर गये—यह खबर फैलाकर मैं कुछ दिन यहाँ निश्चिंत होकर रह सकूँगा। इसलिए घर में खूब अच्छी तरह आग फैल जाने के बाद वह प्रसन्न मन से अपने घर की तरफ चला। कुछ ही दूर जाने पर उसे एक बात सूझी। उसनेसोचा—आखिर तो यशोहर छोड़कर मुझे अपने घर-बारके साथ भागना होगा तो फिर इस समय यहाँ से कुछ रुपये क्यों न प्राप्त कर लूँ? बिना परिश्रम के मिलते हुए धन को क्यों छोड़ूँ? मंगला डायन तो जल में डूबकर मर ही गई। एक बला मेरे सिर से टली। उसके पास काफी रुपये थे। क्यों न एक बार उसके घर चल कर सब रुपये ले लूँ? यदि मैं न लूँगा तो दूसरा कोई अवश्य ले लेगा। दूसरा क्यों ले? मैं ही एक बार प्रयत्न करके देखूँ। यदि उसकी सम्पत्ति मिल जाय तो सब चिन्ता छूट जाय।

उसी समय सीताराम रुक्मिणी के मकान की ओर चला। वहाँ पहुँच कर उसने देखा, द्वार खुला है। वह बड़ा ही प्रसन्न

हुआ। फौरन मकान के भीतर घुसकर उसने एक बार चारों तरफ निगाह दौड़ाई। घर में अन्धकार का साम्राज्य था। कहीं कुछ दिखाई न दिया। फिर वह धीरे-धीरे कमरे के भीतर जाकर इधर-उधर टटोलने लगा। कई बार कई चीजों की ठोकर खाकर गिर पड़ा, किन्तु उसने साहस न छोड़ा। एक बार वह दीवाल से टकरा गया। उसके सिर में चोट भी लगी। सारा शरीर भय से काँप उठा। उसे भास हुआ कि घर में कोई है! किसी के साँस लेने की आवाज उसे सुनाई पड़ने लगी। वह वहाँ से निकलकर बगल की कोठरी में पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही उसे विलक्षण दृश्य दिखलाई पड़ा। उस कमरे में दीपक जल रहा था जिसका प्रकाश कुछ-कुछ बाहर तक आ रहा था। उसने देखा एक स्त्री चुपचाप बैठी थर-थर काँप रही है। बदन के सारे कपड़े भीगे हैं। सिर के बाल बिखरे हैं और लटों से पानी की बूंदें टपक रही हैं शरीर के कपड़े अस्त-व्यस्त हैं। सीताराम ने उसे देखकर समझा कि मङ्गला की प्रेतात्मा यहाँ आकर बैठी है। एक बार उसका हृदय काँप गया, किन्तु फिर हिम्मत करके उसने कहा—अरी, तुम यहाँ कैसे आ गई? क्या तुम मरी नहीं? यमराज को भी धोखा देकर तुम लौट आई! वह भी तुम से न जीत सके! सीताराम की बात सुनकर रुक्मिणी ने उसकी ओर बड़ी भयानक दृष्टि से देखा। कुछ देर तक वह उसी भाँति उसको घूरती रही। सीताराम को बहुत भय मालूम हुआ। उसकी छाती धड़कने लगी।

आखिर रुक्मिणी उठी और हाथ चमकाती हुई चिल्लाकर बोली—हाँ, मैं यमराज के यहाँ से लौट आई हूँ। तुम लोग तो अभी जिन्दे ही हो, मैं कैसे मर जाऊँगी? तुम लोगों को फूँककर, तुम्हारे युवराज को चूल्हे में जलाकर उस चूल्हे की राख अपने बदन में मलूँगी और अपने शरीर की ज्वाला शान्त करूँगी। जब तक मेरा यह मनोरथ पूरा न होगा तब तक यम-

राज के यहाँ मैं नहीं जाऊँगी। अपनी इच्छा पूरी करके तब यमराज के यहाँ जाऊँगी।

सीताराम ने अच्छी तरह रुक्मिणी की आवाज पहचान ली तब उसके हृदय में साहस हुआ। उसने सोचा, क्यों न इसे फिर अपनी ओर मिला लूँ। यह सोचकर वह उसके पास जाकर उसके शरीर से सटकर खड़ा हो गया और बड़े ही मीठे स्वर से बोला—प्रिये, तुम व्यर्थ ही जरा-सी बात के लिए क्रोध कर रही हो। तुम्हारे मन की कब क्या दशा रहती है, कुछ समझ में नहीं आता। जरा मैं तो सुनूँ कि तुम मुझ पर इतना क्यों नाराज हो? मैंने तुम्हारा क्या अपराध किया है?

सीताराम ने बनावटी प्रेम प्रदर्शित कर रुक्मिणी को प्रसन्न करने की जितनी ही चेष्टा की, वह उतनी ही अधिक क्रोधित होती गई। उसका सारा शरीर क्रोधाग्नि से भस्म होने लगा। उसे ऐसी कोई चीज भी पास में न दिखाई पड़ी जिससे सीताराम पर प्रहार करके वह अपना क्रोध शान्त करती। तब उसने दाँत पीसकर कहा—ठहर जाओ, मैं अभी तुम्हारा सिर फोड़कर बताती हूँ कि तुमने मेरा क्या अपराध किया है। यह कहकर वह दूसरे कमरे में पत्थर लेने गई। इधर मौका देखकर सीताराम तुरन्त बाहर भागा। रुक्मिणी ने लौटकर जब उसे वहाँ न देखा तब वह बार-बार उसे गाली देती हुई पत्थर जमीन पर पटकने लगी।

सीताराम ने बाहर आकर सोचा—इसे युवराज के भागने का सब हाल मालूम हो गया है। यह सबसे यह बात कहेगी और हम सबको बिना बँधवाये न छोड़ेगी। मैंने बड़ी भारी भूल की। इसे गला घोंटकर मार डालता तो सब बखेड़ा तय हो जाता। खैर, अब मुझे फौरन यहाँ से भाग जाना चाहिए। एक क्षण के लिये भी यहाँ रुकना ठीक नहीं। यशोहर छोड़ने में ही

अब कल्याण है। उसी दिन रात्रि में सीताराम अपने कुटुम्ब के साथ यशोहर छोड़कर रायगढ़ चला गया।

युवराज की अनिश्चित मृत्यु का समाचार प्रतापादित्य को मालूम हुआ। वे उसी समय न्यायालयमें आकर बैठे। कारागार के पहरेदारों को फौरन बुलवाया। मन्त्री और दो-एक सभासद भी आकर बैठ गये। पहरेदारों से सब हाल पूछा गया। एक आदमी ने कहा—आग लगने पर मैंने युवराज को कारागार के अन्दर देखा था। आग ने कारागार को घेर लिया था। कई आदमियों ने कहा—हमने युवराज की चिल्लाहट सुनी थी। इतने ही में एक आदमी ने युवराजकी अधजली तलवार लाकर महाराज के आगे रख दी। प्रतापादित्य ने वसन्तराय के बारे में पूछा। राज-भवन भर में खोजा गया, किन्तु उनका पता न लगा। किसी ने कहा—आग लगने के समय वे भी कैदखानेमें ही थे। दूसरा बोल उठा—नहीं, वे तो आग लगनेकी खबर सुन-कर रात में ही चले गये। इधर जब न्यायालय में लोगों का इजहार हो रहा था। उसी समय एकाएक बाहर कुछ शोर-गुल सुनायी पड़ा। प्रतापादित्यने एक आदमी को पता लगानेके लिए बाहर भेजा। मालूम हुआ कि एक औरत न्यायालयमें महाराज के पास आना चाहती है, किन्तु प्रहरी उसे रोक रहे हैं। प्रतापा-दित्य ने उस औरत को भीतर ले आने की आज्ञा दी। एक नौकर फौरन रुक्मिणी को अन्दर ले आया। प्रतापादित्य ने उसे अच्छी तरह देखकर पूछा—तुम क्या चाहती हो?

रुक्मिणी ने हाथ चमकाते हुए चिल्लाकर कहा—मैं और कुछ नहीं चाहती। तुम्हारे इन पहरेदारों को छः छः महीने की सजा मिले और जेलखाने में इन्हें अच्छी तरह सड़ाकर, कुत्तोंसे नुचवाकर इनकी जान ली जाय। बस, यही मैं चाहती हूँ। मैं

वह दृश्य खुद देखना चाहती हूं। ये लोग तुम्हें कुछ नहीं समझते। ये तुमसे जरा भी नहीं डरते।

प्रतापादित्य ने कहा--क्या बात हुई है ? साफ-साफ सब बातें कहो।

रुक्मिणी--कहूँ क्या ! तुम्हारे दुलारे युवराज रात में बूढ़े राजा के साथ भाग गये।

प्रतापादित्य--अच्छा, यह बतला सकती हो कि आग किसने लगाई ?

रुक्मिणी--क्या मैं भी न बतला सकूँगी ! तुम्हारे युवराज का जो परम मित्र है, जिसे युवराज अपना सबसे बड़ा हितैषी समझते हैं, जो उनके हृदय में निवास करता है, वही उनका प्रिय पात्र, सीताराम आग लगाने वाला है। इस काम में वह बूढ़ा राजा, युवराज और सीताराम--तीनों शामिल थे। तीनों यहाँ से भाग भी गये।

प्रतापादित्य बड़ी देर तक सोचते रहे। इसके बाद बोले--तुमको यह सब कैसे मालूम हुआ ?

रुक्मिणी ने कहा--यह पूछ कर तुम क्या करोगे ? मेरे साथ अपना आदमी कर दो. मैं स्वयं उनको खोज लूँगी। तुम्हारे आदमियों से यह काम न हो सकेगा। तुम्हारे सब नौकर भेंड़ की तरह बेकार हैं।

प्रतापादित्य ने मन्त्री से कहा--इस औरत के साथ, जितने आदमी कहे, कर दो।

मन्त्री वहाँ से रुक्मिणी को साथ लेकर चले गये। इसके बाद प्रतापादित्य ने पहरेदारों को उचित दण्ड दिया। धीरे-धीरे एक एक कर सब लोग कचहरी से चले गये। अकेले प्रतापादित्य बैठे सिर झुकाये कुछ सोचते रहे।

सायंकालके समय एक मल्लाह ने प्रतापादित्य के पास आकर

युवराज के भागने का सच्चा-सच्चा हाल कहा। युवराज के भागने की सब घटना उसने स्वयं देखी थी। और भी कई आदमियों से उन्हें सब हाल मालूम हुआ। रुक्मिणी के साथ गये हुए आदमी एक सप्ताह के बाद लौटे। उन्होंने कहा कि युवराज रायगढ़ में हैं।

इसके बाद प्रतापादित्य ने मुख्तार खाँ नामक एक पठान सेनानायक को बुला कर कुछ आज्ञा दी।

—:❀:—

२८

यद्यपि उदयादित्य इस बार बहुत दिनों के बाद रायगढ़ आये हैं तथापि उनका हृदय प्रसन्न न हुआ। रायगढ़ आने पर जिस असीम आनन्द का अनुभव उन्हें पहले होता था वह इस बार न हुआ। हर समय चित्त चिन्ता से आक्रान्त रहता था। कहीं भी उनके हृदय को शान्ति न मिलती थी। बार-बार उन्हें यही ख्याल होता था कि दादा जी ने जो काम किया है उसका परिणाम कहीं भयंकर न हो। पिता जी कभी उन्हें न छोड़ेंगे। न जाने कब क्या विपत्ति आ जाय।

उदयादित्य को चिन्तित देखकर वसन्तराय को बहुत दुःख होता था। वे हर तरह से उन्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा किया करते थे। उन्हें अपने पास बैठाकर सितार बजा कर सुनाते थे, कभी साथ में लेकर इधर-उधर टहलने चले जाते थे। राज-काज की ओर से उन्होंने अपना ध्यान ही हटा लिया था। राज्य के किसी काम की ओर उनकी दृष्टि न जाती थी। वे सर्वदा युवराज को अपनी आँखों के सामने रखते थे। उन्हें इस बात का सन्देह बना रहता था कि कहीं उदयादित्य फिर यशोहर न चले जाँय। इसलिये युवराज से कहा करते थे—'बेटा अब तुम्हें मैं उस निर्दय देश में कभी न जाने दूँगा।'

एक दिन प्रातःकाल उठकर वसन्तराय ने उदयादित्य से कहा—मैंने कल रात्रि में बड़ा बुरा स्वप्न देखा है। मानों तुम मुझसे हमेशा के लिए अलग कर दिये गये हो।

उदयादित्य ने वसन्तराय के पैर पकड़कर कहा—नहीं दादा जी, अगर हमारी आपकी जुदाई होगी भी तो हमेशा के लिए क्यों होगी। ऐसा कभी नहीं हो सकता।

वसन्तराय ने मुँह फेर कर कहा—अब हमेशा के लिए ही समझना चाहिए! बुड्ढा हो गया हूँ। अब मेरा कौन ठिकाना। अच्छा, बताओ तो मैं और कितने दिन जीऊँगा?

उदयादित्य ने कुछ देर चुप रह कर कहा— दादा जी, यदि हम लोगों का विच्छेद हो ही गया तो क्या होगा।

वसन्तराय कल रात्रि के दुःस्वप्न से बड़े चिन्तित हो रहे थे। उनकी आँखों के आगे बार-बार वही दृश्य छाया के समान नाच जाता था। हृदय में नाना प्रकार की दुश्चिन्ताएँ उठ रही थीं। उदयादित्य की बात से उनका हृदय काँप उठा। उन्होंने उदयादित्य को गले लगाकर कहा—बेटा, विच्छेद क्यों होगा? यदि तुम इस बुड्ढे का तिरस्कार न करोगे तो तुम्हें मुझसे कोई अलग नहीं कर सकता।

वसन्तराय की बात से उदयादित्य के नेत्रों में जल भर आया। साथ ही साथ उन्हें इस बात का आश्चर्य भी हुआ कि उनके हृदय की बात को वसन्तराय कैसे जान गये। अपने हृदय के वेग को रोककर उन्होंने कहा–दादा जी, मैं तो स्वयं आप से अलग नहीं होना चाहता; किन्तु मेरे यहाँ रहने से आपके ऊपर विपत्ति आ जाने की सम्भावना है। केवल एक यही चिन्ता मुझे अशान्त बना रही है।

वसन्तराय ने मुसकुराकर कहा–विपत्ति से अब मैं थोड़े ही डरता हूँ। अधिक से अधिक मैं मर जाऊँगा। इससे बड़ी विपत्ति

तो कोई नहीं। मृत्यु तो मुझे आलिंगन करने के लिए लपकती ही आ रही है। मेरी जीवन नौका तो सम्पूर्ण बाधाओं और झंझटों को पारकर अब किनारे पर पहुँची है। यदि वह डूब भी जाय तो मुझे अब कोई चिन्ता नहीं।

वर्षा हो रही थी। आज दिन भर उदयादित्य वसन्तराय के पास ही रहे। वर्षा बन्द होने पर उदयादित्य बाहर जाने लगे तो वसन्तराय ने पूछा—बेटा, कहाँ जा रहे हो?

उदयादित्य—जरा घूमने जा रहा हूं।

वसन्तराय—आज घूमने मत जाओ।

उदयादित्य—क्यों, दादाजी!

वसन्तराय उदयादित्य से लिपट गये और बोले—नहीं बेटा, आज तुम मेरे पास ही रहो, कहीं न जाओ।

उदयादित्य—मैं अधिक दूर न जाऊँगा; अभी थोड़ी ही देर में लौट आऊँगा। यह कहकर उदयादित्य बाहर चले गये। द्वार पर ही एक नौकर ने कहा—महाराज, मैं भी आपके साथ ही चलता हूं, अकेले न जाइए।

उदयादित्य—नहीं, कोई जरूरत नहीं।

नौकर—साथ में कोई अस्त्र भी नहीं है।

उदयादित्य—अस्त्र की क्या जरूरत है।

नौकर चुप हो गया। उदयादित्य पास के ही एक मैदान में पहुंचे। धीरे-धीरे सूर्य का प्रकाश मन्द होने लगा। उनके हृदय में तरह-तरह की चिन्ताएँ उठ रही थीं। कभी अपने विषय में सोचते—मेरा भविष्य कैसे बीतेगा। अभी तो जीवन के कुछ ही दिन व्यतीत हुए हैं। न जाने मेरे भाग्य में अभी क्या-क्या लिखा है। इसके बाद विभा की याद आ गई। विभा इस समय कहाँ होगी। उसके दिन किस तरह बीतते होंगे। मैं ही उसके सुखमय जीवन का ग्रह था। क्या अब वह सुख से होगी? विभा

ने मेरे लिए कितना त्याग किया। उन्होंने विभाको मन ही मन बहुत आशीर्वाद दिया।

टहलते हुए युवराज पासके ही एक जंगलमें घुसे। वहाँ दिन में चरवाहे अपने पशुओं को चराने आया करते थे। सायंकाल हो गया था। अंधकार धीरे-धीरे फैलने लगा था। पीपल के एक बड़े वृक्ष के नीचे युवराज खड़े हो गये। उनके हृदय में रायगढ़ से भागनेका विचार उठने लगा। खड़े-खड़े इस विषय पर वे सोचने लगे। उनके हृदय में ख्याल हुआ—मेरे भाग जाने पर जब दादा जी को मालूम होगा तब आश्चर्यचकित हो जाँयगे। एक बार उनके ऊपर वज्र-सा टूट पड़ेगा उनकी उस समय क्या दशा होगी? उदयादित्य के नेत्रों के आगे वसन्तराय की वह काल्पनिक आकृति नाचने लगी। उनका हृदय चञ्चल हो उठा।

उदयादित्य इसी विचार में डूबे हुए थे कि उनके कानों में किसी स्त्री के ये शब्द सुनाई पड़े—देखो, इसी जगह तुम्हारे युवराज हैं, वह सामने खड़े हैं।

हाथ में मशाल लिए दो सिपाही युवराज के पास आ खड़े हुए। धीरे-धीरे कई सिपाहियों ने उन्हें आ घेरा। इसके बाद वह युवराज के पास आकर बोली—मुझे पहचाना? मेरी ओर एक बार आँखें खोलकर देखो! युवराज ने प्रकाश में उसकी ओर देखा, रुक्मिणी है। युवराज के साथ रुक्मिणी का यह अशिष्ट व्यवहार सैनिकों से सह्य न हुआ। उन्होंने उसे डाँटकर कहाँ—दूर हट यहाँ से। किन्तु रुक्मिणी ने इन लोगोंकी बात पर ध्यान न देकर फिर कहा—जानते हो, यह सब किसने किया है? इन सिपाहियों को यहाँ तक कौन लाया है? मैंने ही यह सब किया है। मैंने ही तुम्हें खोज निकाला है। तुमने मुझे ठुकराया और मैंने तुम्हारे लिए दर-दर की खाक छानी। मैं तुम्हारे लिये इतना कष्ट सहूं और

तुम—युवराज ने रुक्मिणी की ओर घृणा से देख कर मुँह फेर लिया। सिपाहियों ने फौरन रुक्मिणी को वहाँ से खींचकर हटा दिया। इसके बाद मुख्तार खाँ युवराज के सामने आकर सलाम करके अदब से खड़ा हो गया। उनकी ओर आश्चर्य से देखकर युवराज ने कहा—मुख्तार खाँ क्या हाल है?

मुख्तार खाँ ने नम्र स्वर में कहा—सरकार, महाराज की आज्ञा के मुताबिक हमलोग यहाँ आये

युवराज ने पूछा—उन्होंने क्या आज्ञा दी है?

मुख्तार खाँ ने प्रतापादित्य का हस्ताक्षर किया हुआ पत्र निकाल कर युवराज को दिया। पत्र पढ़कर युवराज ने कहा—ठीक है, किन्तु इसके लिए इतने आदमियों की क्या आवश्यकता थी? केवल उनके आज्ञा पत्र से ही मैं उनकी सेवा में उपस्थित हो जाता। किसीके भी द्वारा वे भेज सकते थे। मैंने तो स्वयं ही जाने का विचार किया था, और इसी उद्देश्य से इस समय बाहर निकला था। अब तो तुमलोग भी मिल गये। अब देर करने की क्या आवश्यकता? चलो, अभी पिताजी की सेवा में चलता हूँ।

मुख्तार खाँ नें विनयपूर्वक कहा—अभी तो हमलोग न जा सकेंगे!

युवराज ने डरकर पूछा—क्यों?

मुख्तार खाँ—महाराज की एक और आज्ञा है। बिना उसे पूरी किये हम कैसे जा सकते हैं!

युवराज ने उसी स्वर में पूछा—और क्या आज्ञा है?

मुख्तार खाँ—महाराज ने रायगढ़ के राजा को मार डालने का हुक्म दिया है।

युवराज एकदम चौंक उठे। कुछ रुक कर उन्होंने कहा—नहीं, नहीं! ऐसी आज्ञा वे कभी नहीं दे सकते। यह झूठ है।

मुख्तार खाँ—युवराज, मैं आपसे झूठ नहीं बोल सकता।

महाराज ने यही आज्ञा हमें दी है। उनका आज्ञापत्र मेरे पास है।

उदयादित्य एकदम उद्विग्न हो उठे। उन्होंने मुख्तार खाँ का हाथ पकड़ कर बड़ी व्यग्रता से कहा—मुख्तार खाँ, तुमने महाराज की आज्ञा का मतलब नहीं समझा। उनके इस आज्ञा का यह मतलब है कि अगर मुझे दादाजी हाजिर न करें तो उन्हें—किन्तु मैं तो स्वयं चलने के लिए तैयार हूँ। मुझे अभी बाँधकर ले चलो। अब जरा भी देर न करो।

मुख्तार खाँ—युवराज, महाराज ने बड़ी सख्त आज्ञा दी है। उनकी आज्ञा का मतलब मैं अच्छी तरह समझता हूँ।

युवराज बड़ी अधीरता से बोले—नहीं मुख्तार खाँ, तुम जरूर भूल रहे हो। ऐसी आज्ञा महाराज नहीं दे सकते। चलो, अभी यशोहर चल कर मैं महाराज को तुम लोगों के बारे में समझा दूंगा। यदि वे फिर तुम्हें ऐसी आज्ञा दें तो तुम्हारी जो इच्छा हो सो करना।

मुख्तार खाँ ने विनयपूर्वक हाथ जोड़कर कहा—युवराज, मेरा अपराध क्षमा कीजिए। महाराज की आज्ञा मैं नहीं टाल सकता।

युवराज और अधिक अधीर होकर बोले—मुख्तार खाँ, तुम मेरी बात नहीं मान रहे हो किन्तु याद रक्खो, एक दिन यशोहर के सिंहासन पर मैं ही बैठूँगा। तुम मेरी बात न मानकर अच्छा नहीं कर रहे हो। मैं जो चाहता हूँ उसे मान लो और मुझे अप्रसन्न न करो।

मुख्तार खाँ कुछ न बोल सका। नीचे सिर किये चुपचप खड़ा रहा।

युवराज का शरीर काँपने लगा। चेहरे से उदासी टपकने लगी। चित्त व्याकुल हो उठा। उन्होंने मुख्तार खाँ का हाथ पकड़ कर कहा—तुम वृद्ध, बेकसूर, धर्मात्मा वसन्तरायजी की हत्या करके सुखी न रहोगे। तुम्हें नरक में भी जगह न मिलेगी।

मुख्तार खाँ—आप ठीक कहते हैं, किन्तु स्वामी की आज्ञा का पालन करने में पाप नहीं होता।

युवराज को कुछ क्रोध आ गया। उन्होंने कड़ककर कहा—कौन कहता है कि पाप नहीं होता? किस पुस्तक में यह लिखा है? तुम नहीं समझते। लेकिन मैं सच कहता हूं कि पाप की आज्ञा का पालन करने से अवश्य पाप होता है।

मुख्तार खाँ को चुप देखकर उन्होंने फिर कहा—यदि तुम नहीं मानते तो मुझे छोड़ दो। मैं दादाजी के पास जाता हूँ। तुम अपनी सेना लेकर वहाँ आना। मैं तुमसे युद्ध करूँगा। यदि तुम मुझे जीत लेना तब जैसी इच्छा हो वैसा करना।

मुख्तार खाँ ने इस बार भी कुछ उत्तर न दिया। उसके साथ के आदमियों ने युवराज को चारों ओर से घेर लिया। युवराज ने जब कोई उपाय न देखा तब वह जोर से चिल्लाकर बसन्तराय को सावधान करने लगे। किन्तु उनकी आवाज मैदान के बाहर न पहुँच सकी। कुछ लोगों ने युवराज को पकड़ रक्खा। वे चिल्ला उठे—दादा जी, सावधान रहियेगा। इसी समय एक व्यक्ति उधर से जाता हुआ युवराज को दिखाई पड़ा। उन्हों उसे पुकारकर कहा—भाई, महाराज को जाकर फौरन सावधान कर दो। जाओ शीघ्र जाओ। सिपाहियों ने उस व्यक्ति को भी पकड़ लिया। अब जो कोई उधर से जाता दिखाई देता उसे सिपाही गिरफ्तार कर लेते।

कुछ आदमियों को वहीं युवराज की निगरानी में छोड़कर मुख्तार खाँ बाकी सिपाहियों को साथ लेकर गढ़ की ओर चला। उसने अपना भेस बदल लिया था। सब लोगों ने अपने हथियार छिपा लिये थे। गढ़ के अन्दर जाने के लिए कई मार्ग थे। कई टुकड़ियों में विभक्त होकर उन लोगों ने भिन्न-भिन्न मार्गों से गढ़ में प्रवेश किया।

अन्धकार अच्छी तरह फैल चुका था। वसन्तराय उस समय सायंकाल के नित्य-कृत्य में लगे थे। चारो ओर निःस्तब्धता छा रही थी। केवल मंदिरों के घड़ी-घंटे और शंख आदि की आवाज सुनाई पड़ रही थी। राजभवन में पूर्ण शान्ति थी। नौकर-चाकर सभी शाम की कुछ देर की छुट्टी में इधर-उधर चले गये थे।

वसन्तराय बैठे सन्ध्योपासन कर रहे थे। एकाएक उन्होंने देखा कि उनके कमरेमें मुख्तार खां घुस आया है। वे घबराकर बोल उठे—खां साहब, मैं पूजा कर रहा हूँ; इधर न आओ। बाहर चलो, मैं अभी पूजा समाप्त करके आता हूँ।

मुख्तार खां कमरे के बाहर जाकर द्वार पर खड़ा हो गया। वसन्तराय ने सन्ध्योपासन समाप्त करके बाहर आकर उससे प्रेमपूर्वक पूछा—कहो भाई, अच्छे तो हो?

मुख्तार खां ने सलाम करके कहा—जी हां, महाराज! सब आप की कृपा है।

वसन्तराय—अच्छा बैठो, हाथ पैर धोकर कुछ जलपान करो।

मुख्तार खां—खाना-पीना हो चुका है।

वसन्तराय—अच्छा तो तुम्हारे आराम करने का प्रबन्ध कर देता हूं।

मुख्तार खां—जी नहीं, रुकूँगा नहीं, जिस काम के लिए आया हूं उसे पूरा करके अभी वापस जाना होगा।

वसन्तराय ने जोर देते हुए कहा—नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। अभी तुम थके हो; आज मैं तुम्हें न जाने दूंगा। आज यहीं रहकर तुम आराम करो। कल चले जाना।

मुख्तार खां—नहीं, महाराज मुझे जल्दी ही यशोहर पहुँचना है।

वसन्तराय ने पूछा—ऐसा कौन-सा आवश्यक काम है, जिसके लिए तुम इतनी जल्दी में हो? अच्छा, यह तो बताओ प्रताप तो अच्छी तरह है?

मुख्तार खाँ—जी हाँ अच्छी तरह हैं।

वसन्तराय ने अधीर होकर पूछा—तब वह कौन-सा इतना जरूरी काम है? जल्दी बताओ, मेरा दिल बहुत घबरा रहा है। तुम्हारी बात कुछ समझ में नहीं आती। कहो, प्रताप के ऊपर कोई आफत तो नहीं आ पड़ी है?

मुख्तार खाँ-जी नहीं, उनके ऊपर कोई आफत नहीं आयी है। मैं महाराज की आज्ञा का पालन करने आया हूं।

वसन्तराय ने पूछा—उनकी क्या आज्ञा है?

मुख्तार खाँ ने एक आज्ञा पत्र निकालकर उन्हें दिया। वसन्तराय उस पत्र को लेकर दीपक के पास जाकर पढ़ने लगे। इतने ही में सैनिकों ने आकर द्वार को घेर लिया। पत्र पढ़ लेने के बाद वसन्तराय ने मुख्तार खाँ के पास आकर शान्त भाव से पूछा—यह आज्ञापत्र क्या प्रताप का ही लिखा हुआ है?

मुख्तार खाँ—जी हाँ—

वसन्तराय ने फिर पूछा—खाँ साहब, ठीक बताओ। क्या ये अक्षर प्रताप के ही हाथ के हैं!

मुख्तार खाँ—जी हाँ, महाराज!

अब वसन्तराय का गला भर आया। उन्होंने रो कर कहा—खाँ साहब, प्रताप को मैंने अपने इन्हीं हाथों से पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है। मैं उसे अपनी गोद में लेकर रात-दिन खेलाया करता था। उस समय वह बहुत छोटा था। उसे इन बातों की याद न होगी। बड़े होने पर उसकी शादी कराई, फिर उसे सिंहासन पर बैठाया। यहाँ तक कि उसके बच्चों को भी गोद में खेलाया। आज उसी प्रताप ने अपने हाथ से ऐसा लिखा!

मुख्तार खाँ सिर झुकाये चुपचाप खड़ा रहा। उससे कुछ न बोला गया।

वसन्तरायने पूछा—मेरा बेटा उदय कहां है?

मुख्तार खां—वे गिरफ्तार हुए हैं। महाराज के सामने उन्हें हाजिर किया जायगा।

वसन्तराय चौंककर बोले—ऐं! उदय गिरफ्तार हुआ है? खां साहब, क्या मैं उसे एकबार देख न सकूँगा?

मुख्तार खां—जी नहीं, महाराज की ऐसी आज्ञा नहीं है।

वसन्तराय के नेत्रों में जल भर आये। उन्होंने उसका हाथ पकड़ विनीत स्वर में कहा—एक बार उदय से मिल लेने दो। भाई, मेरी इतनी बात तो मान लो।

मुख्तार खां—लाचार हूं, महाराज! मैं उनके हुक्म के खिलाफ कैसे चल सकता हूँ।

वसन्तराय ने ठंडी सांस लेकर कहा—हाय! इस संसार में किसी के हृदय में दया नहीं है। सब लोग निष्ठुर हैं। अच्छा, आओ भाई, अपने महाराज की आज्ञा का पालन करो।

तब मुख्तार खां ने झुककर सलाम किया और हाथ जोड़कर कहा—महाराज, इस ताबेदार को माफ कीजिएगा। मैं अपने मालिक का हुक्म मान रहा हूं। आपकी सेवा में मैंने अपने स्वामी की आज्ञा रख दी इसमें मेरा कोई अपराध नहीं है। आप स्वयं इस बात पर विचार कर सकते हैं कि इसमें मेरा कोई वश है या नहीं।

वसन्तराय ने कहा—नहीं भाई, तुम्हारे ऊपर मैं दोष थोड़े ही लगा रहा हूं। तुमने क्या अपराध किया है कि तुम्हें माफ करूँ? कहते-कहते फिर उनका गला भर आया और वे आगे कुछ बोल न सके। कुछ देर रुककर उन्होंने मुख्तार खां को गले लगा कर कहा—भाई, प्रताप से जाकर मेरा आशीर्वाद कह देना और कहना कि वसन्तराय मरते समय भी तुम्हें आशीर्वाद दे रहा था। साथ ही एक काम मैं तुम्हें भी सौंपता हूं। मेरे उदय की जिम्मेदारी तुम्हें अपने ऊपर लेनी होगी। उसका कोई कसूर नहीं है। उसके ऊपर कोई झूठा दोष लगाकर उसे किसी तरह की तकलीफ

न दी जाय, इस बात का तुम ख्याल रखना। नहीं तो मरने के बाद भी मेरे हृदय को शान्ति न मिल सकेगी !

इसके बाद वसन्तराय हाथ में माला लेकर आखें बन्द करके वहीं पृथ्वी पर बैठ गये और मुख्तार खां से बोले—खां साहब, अब देर न करो; अपना काम पूरा करो !

मुख्तार खां ने अब्दुल्ला जल्लाद को पुकारा। अब्दुल्ला हाथ में नङ्गी तलवार लिए वहां आ खड़ा हुआ। उसे इशारा करके मुख्तार खां बाहर चला गया। कुछ क्षण के पश्चात् अब्दुल्ला रक्त से सनी हुई तलवार हाथ में लिये कमरे से बाहर निकला। उसके चेहरे से पैशाचिकता टपक रही थी। कमरे में रक्त की धारा बहने लगी।

—:❀:—

२६

मुख्तार खां अधिकांश सेना रायगढ़ में ही छोड़कर कुछ सिपाहियों के साथ उदयादित्य को लेकर उसी समय यशोहर की ओर रवाना हो गया। मार्ग में दो दिन लगे। इस बीच में उदयादित्य ने न तो किसी से बातचीत की और न कुछ अन्न-जल ग्रहण किया। वे हर समय किसी चिन्ता में डूबे रहते थे। तीसरे दिन सब लोग यशोहर पहुँचे। युवराज एक कैदी के समान प्रतापादित्य के सामने हाजिर किये गये। प्रतापादित्य ने उस समय उन्हें महल के अन्दर एक कमरे में बन्द करने की आज्ञा दी। थोड़ी देर के पश्चात् प्रतापादित्य उस कमरे में पहुँचे। उदयादित्य ने उन्हें अपने सामने देख कर घृणा से मुँह फेर लिया। उन्होंने पिता की ओर देखा तक नहीं।

प्रतापादित्य ने उदयादित्य से बड़े ही गम्भीर स्वर में कहा—तुम्हारे अपराध की तुम्हें क्या सजा दी जाय ?

उदयादित्य ने बड़े शान्त भाव से कहा—जो आप उचित समझें।

प्रतापादित्य-तुम मेरे उत्तराधिकारी होने के योग्य नहीं हो !

उदयादित्य—आपका कहना ठीक है ।

प्रतापादित्य—तुम जो कह रहे हो, यह सच्चे हृदय से कह रहे हो, इसका मुझे कैसे विश्वास हो ?

उदयादित्य ने कहा—यदि आपको विश्वास नहीं होता तो मैं भगवती दुर्गा की सौगन्ध खाकर कहता हूं कि मैं आपके राज्य की सुई की नोक बराबर पृथ्वी का भी लोभ नहीं रखता। यद्यपि मैं अभागा हूं, किन्तु मैं अपने स्वार्थ के लिए झूठ नहीं बोलूँगा। मुझे आपके राज्य की कोई वस्तु न चाहिए। आप प्रसन्नता से समरादित्य को उत्तराधिकारी बनावें। किन्तु मेरी एक प्रार्थना आप से है।

प्रतापादित्य ने प्रसन्न मन से कहा—क्या चाहते हो बोलो ?

उदयादित्य—महाराज, मैं यही चाहता हूं कि आप मुझे बन्द करके न रक्खें मुझे छोड़ दें। मैं यहां से इसी समय काशी चला जाऊँगा। कुछ द्रव्य भी मैं आपसे चाहता हूं। मैं काशी में दादा जीके नाम से एक धर्मशाला और एक मन्दिर बनवाना चाहता हूँ।

प्रतापादित्य—अच्छा, मैं तुम्हारी इस प्रार्थना को स्वीकार करता हूँ।

इसके बाद उदयादित्य प्रतापादित्यकेसाथ कालीजी के मन्दिर में गये। वहां उन्होंने माता का चरण छूकर सौगन्ध खाई—मां, मैं तुम्हारे चरणों को स्पर्श करके कहता हूँ कि इस जीवन में मैं कभी यशोहर की तिलमात्र भूमि को भी पाने के लिए इच्छा न करूँगा, यशोहरके राजसिंहासन पर मैं कभी न बैठूँगा और यहां की हुकूमत करने के लिए कभी इच्छुक न होऊँगा। यदि मैं कभी अपने वचन को भंग करूँ तो दादाजीके मारने का पूरा पाप मुझे ही हो।

मंदिर से लौटने पर उदयादित्य काशी जानेकी तैयारी करने लगे। महारानीको जब उनके काशी जाने का समाचार मिला तब

घबराई हुई उदयादित्य के पास आकर बोली—बेटा मुझे भी अपने साथ ले चलो। तुम्हारे जाने पर मैं यहाँ न रह सकूँगी।

उदयादित्य ने कहा—माँ, तुम ऐसी बात क्यों कहती हो? तुम्हारे समरादित्य हैं, और सब लोग भी तुम्हारे पास ही रहेंगे। तुम्हारे यहाँ से जाने पर यहाँ की राजलक्ष्मी चली जायगी।

रानी की आँखों से आँसू गिरने लगे। उन्होंने भरे गले से कहा—बेटा, तुम तो इसी उम्र में सारे सुखों को लात मारकर जा रहे हो और मैं सुख से रहूँ! मैं यहाँ का राजपाट लेकर क्या करूँगी? तुम संन्यासी के समान जीवन बिताने काशी जा रहे हो। न जाने क्या-क्या कष्ट तुम्हें सहने पड़ेंगे! मेरे बिना तुम्हारी देख-भाल कौन करेगा? यदि तुम्हारे पिता निर्दयी हो गये हैं तो क्या मैं भी तुम्हारी ममता छोड़ दूं? नहीं मैं ऐसा न कर सकूँगी।

उदयादित्य को भी रुलाई आ गई। उन्होंने माता को समझाते हुए कहा—माँ, ऐसा न कहो। तुम्हारा जाना उचित न होगा। मेरे यहाँ रहने से लोगों के हृदय में सर्वदा एक प्रकार का संदेह बना रहेगा। मुझे जाने दो। मैं तो बाबा विश्वनाथ की शरण में जा रहा हूँ। मुझे वहाँ कोई कष्ट न होगा।

माता से विदा होकर उदयादित्य विभा के पास गये। वहां जाकर उन्होंने गदगद कण्ठसे कहा—प्यारी बहन विभा, मैं काशी जा रहा हूँ। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं काशी जाने के पहले तुम्हें ससुरालमें पहुँचा दूं। मैं स्वयं तुम्हें वहां ले जाना चाहता हूं।

विभा ने बात बदलते हुए पूछा—दादाजी अच्छी तरह है न?

'हाँ' कहकर उदयादित्य फौरन वहाँ से चले गये।

उदयादित्यने विभा को चन्द्रद्वीप पहुँचानेको सब तैयारी कर ली। विभा अपनी माता के गलेसे लिपटकर खूब रोई। बहुत सी स्त्रियाँ विभासे मिलने आयीं। बड़ी-बूढ़ी स्त्रियों ने उसे तरह-तरह

की शिक्षाएँ दीं। विभा ने सिर नीचा करके सबकी बातों को सुना। महारानी ने उदयादित्य के पास जाकर उनसे पूछा—क्यों बेटा, विभा को चन्द्रद्वीप ले तो जा रहे हो किन्तु यदि उन लोगों ने उसका अनादर किया तो ?

उदयादित्य ने चौंककर पूछा—क्यों माँ वे लोग अनादर क्यों करेंगे ?

महारानी—शायद वे विभा से अप्रसन्न हों तो ?

उदयादित्य—नहीं माँ, मेरी भोली विभा के ऊपर वे कभी अप्रसन्न नहीं हो सकते !

रानी ने रोकर कहा—बेटा, यदि वे विभा का अपमान करेंगे तो उसका जीना कठिन है। उसे खूब सावधानी से पहुँचाना।

रानीको प्रणाम करके विभा उदयादित्य के साथ बिदा हुई। उस समय रानी ने बड़ी कठिनता से अपने आंसुओं को रोक रक्खा था। उन लोगोंके जाते ही वह पृथ्वीपर गिरकर रोने लगीं। इसके बाद उदयादित्य और विभाने पिताको प्रणाम करके अन्य सभी लोगों से बिदा ली। फिर उदयादित्यने समरादित्यको प्यार करके आशीर्वाद दिया। सभी नौकर-चाकर उदयादित्य को घेर कर रोने लगे। सभी उन्हें प्राण से अधिक प्रिय थे। अन्तमें दोनों व्यक्तियों ने काली जी को प्रणाम करके प्रस्थान किया।

यशोहर की सीमाके बाहर पहुंचकर उदयादित्यने एक ठण्डी सांस ली। मानों उन्होंने आज शोक-संसार से मुक्ति पाई। उन्होंने निश्चय किया, अब कभी यहां न आऊँगा। अत्याचारका प्रतिरूप कठोर राजमहल राक्षसकी भांति खड़ा उन्हें दिखाई पड़ा।

धीरे-धीरे उदयादित्यकी नौका आगे बढ़ी। मार्गमें पक्षियोंका कलरव सुनकर उनका हृदय आनन्दसे नाच उठा। उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की—हे भगवान्, जन्म-जन्मान्तर इसी प्रकार स्वतन्त्र होकर प्रकृतिका आनंद लेता रहूं। दुर्जनोंकी संगतिमें कभी न पड़ूँ।

विभा का हृदय भी उस समय आनन्द-सागर में गोते लगा रहा था। उसके हृदय के भाव उसके मुख पर परिलक्षित हो रहे थे आज वह अपने उस आराध्य देव के पास जा रही है जिसके ध्यान में वह इतने दिनों से निमग्न थी। जिसके कण्ठ से लगने के लिये उसका असीम प्रेम आज तक उसे उद्वेलितकर रहा था उसीके सन्निकट पहुँचने आज वह जा रही है। एक नवीन उमंग से उसका हृदय भरा आ रहा है। उदयादित्य, तरह-तरह की बातों से उसे बहलाने लगे। विभा को भी उन सब बातों से बड़ा आनन्द मिल रहा था।

रामचन्द्रराय के राज्य में जब नौका पहुंची तब विभा को वहाँकी शोभा देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। उसका मुख-कमल खिल उठा। वहाँ की प्रजा को देख कर उसके हृदय में एक अपूर्व स्नेह का उदय हुआ। कहीं यदि कोई दरिद्र दिखाई पड़ जाता तो उसका हृदय फटने लगता। उसी समय वह सोचती—मैं महलमें जाकर इसे बुलाऊँगी और इसके कष्ट को दूर करने का प्रयत्न करूँगी। वह इस राज्य में किसी को दुखी न देखना चाहती थी। वह अपनी प्रजा के मुँहसे 'माँ' शब्द सुनने के लिए लालायित हो उठी।

राजधानी के समीप पहुंचकर उदयादित्य ने गाँव के पास नाव लगाने की आज्ञा दी। उन्होंने सोचा की अपने आने का सम्वाद राजमहल में भेज देंगे और वहाँ से आदमी आकर आदर-पूर्वक उन्हें ले जायँगे। रात्रि हो जाने के कारण दूसरे दिन आदमी भेजना निश्चय किया।

३०

चन्द्रद्वीप में आज सभी लोग कार्यव्यस्त हैं। चारो ओर बाजे बज रहे हैं, जैसे कोई उत्सव हो। बाजों की आवाज सुनकर विभा का हृदय आनन्द से भर उठा। वह अपने उस

उमंग को छिपाने का यत्न कर रही थी। उदयादित्य नदी तट पर उत्सव का कारण जानने के लिये गये।

इतने ही में एक आदमी नाव के पास आया। उसने नाव-वालों से पूछा—यह नाव किसकी है ? नाव पर से एक आदमी बोल उठा—कौन ? राममोहन ? आओ भाई, आओ ! राम-मोहन तुरन्त नाव पर चढ़ गया। विभा उसे देखते ही मारे प्रसन्नता के बोल उठी—मोहन।

राममोहन ने कहा—हाँ माता जी।

राममोहन को विभा का प्रसन्न मुख देखकर बड़ा दुःख हुआ। उसने उदास होकर कहा—माँ,तुम आज यहाँ आई हो ?

विभा—हाँ, मोहन, मेरे आने का समाचार महाराज को मिला या नहीं ? तुम मुझे लेने आये हो क्या ?

राममोहन—नहीं, अब तुम यहीं रहो। कोई जल्दी नहीं है, दूसरे दिन ले चलूँगा।

राममोहन के भाव से विभा का चेहरा उदास हो गया। उसने कहा—क्यों मोहन, आज क्यों न जाऊँ ?

राममोहन—आज शाम हो गई है।

विभा का हृदय काँप उठा। वह अधीर होकर बोली—सच बताओ क्या बात है ?

अब राममोहन अपनेको न रोक सका। उसका गला भर आया। उसने वहीं बैठकर रोते हुए कहा—माँ, आज तुम्हारे इस राज्य में तुम्हारे लिए स्थान नहीं। आज महाराजकी दूसरी शादी हो रही है।

इतना सुनते ही विभा पीली पड़ गई। उसके उपर वज्रपात हो गया। राममोहन ने फिर कहा—माँ, तुम्हारा यह दास तुम्हें बुलाने गया था; उस समय तुमने इसे निठुर होकर लौटा दिया। मैं महाराज को कुछ भी उत्तर न दे सका। कुछ कहने के योग्य मेरा मुँह ही न रहा।

विभाके नेत्रोंके आगे अन्धकार छा गया। वह वहीं मूर्छित होकर गिर पड़ी। राममोहन फौरन विभाके मुँह पर पानीके छींटे देकर होशमें ले आया। विभा होशमें आकर उठ बैठी। उसकी सम्पूर्ण आशाओंपर तुषारापात होगया। पतिके द्वारपर आकर भी उसकी प्यास न बुझ सकी। पतिके जिस सुखकी आशासे वह उत्सुक थी वह आशा चूर्ण हो गई। अन्त में उसने व्याकुल कंठ से पूछा—मोहन, उन्होंने मुझे बुलाया था, क्या मैं बहुत देर करके आई हूं?

मोहन—हाँ माँ, इसीसे तो—

विभा ने बीच में ही अधीर होकर कहा—क्या वे मेरा अपराध अब क्षमा न करेंगे?

मोहन—आशा तो नहीं है।

विभा ने जोर से रोकर कहा—मोहन, मैं केवल एक बार उनका दर्शन करना चाहती हूँ!

राममोहन की आँखों से भी आँसू गिरने लगे। आँखें पोंछते हुए उसने कहा—माँ, आज रुक जाओ।

विभा ने कहा—नहीं, मैं आज ही उन्हें देखूँगी।

राममोहन—अच्छा, युवराज को आ जाने दो।

विभा—नहीं, मैं इसी समय चलूँगी।

विभा ने सोचा कि शायद उदयादित्य इस बात को जानकर अपमान के ख्याल से उसे न जाने दें।

राममोहन—अच्छा तो ठहरिए, एक पालकी लेकर मैं अभी आता हूँ।

विभा ने उसे रोकते हुए कहा—नहीं, मुझे पालकी न चाहिए। मैं रानी नहीं हूं। मैं एक भिखारिन की तरह उनके पास जाऊँगी।

राममोहन—किन्तु, माँ, मैं अपने जीते-जी यह कैसे देख सकूँगा?

विभा ने अधीर होकर कहा—मोहन, मैं तुम्हें हाथ जोड़ती हूं, मेरे जाने में बाधा न डालो। बहुत देर हो रही है।

लाचार होकर राममोहन उसे लेकर चला। नौका के नौकरों ने कहा—सरकार, आप इस भेस में कहाँ जा रही हैं !

राममोहन ने उत्तर दिया—यह इनका राज्य है। ये जिस भेस में जहाँ चाहें, जा सकती हैं।

नौकरोंने रोकना चाहा किन्तु राममोहनने उन्हें डाँट दिया।

—+※+—

३१

राममोहन के साथ विभा अपार जन-समूह में घुसती हुई आगे बढ़ी जा रही है। आज विभा को न तो लज्जा का अनुभव हो रहा है और न उसे कुछ दिखाई दे रहा है। वह अपनी ही धुन में बढ़ी चली जा रही है। यदि पहले कभी उसे इस तरह जाना होता तो वह मारे लज्जा के मर जाती। किन्तु आज उसके लिए सब शून्य है।

भीड़ को पार करके वह फाटक के द्वारपर पहुँची। राममोहन आगे बढ़ गया था। विभा को पहरेदार ने रोक दिया अब विभा को होश हुआ। उसने अपने चारो ओर देखकर फौरन घूँघट डाल लिया। वह मारे लज्जा के गड़ गई। राममोहन ने पीछे घूमकर देखा कि विभा द्वार पर खड़ी है, पहरेदार उसे रोक रहा है। उसने पहरेदार को डाँटा और विभा को लेकर महल के अन्दर चला गया। सेनापति भी वहीं आ गया। उसने भी पहरेदार की खूब मरम्मत की। विभा महल के अन्दर गई, किंतु उसकी ओर देखकर भी किसी ने उसका आदर न किया।

रामचन्द्रराय और रमाई कमरे में बैठे थे। विभा वहाँ जाकर राजा की ओर एक बार देखकर उनके पैरों के पास बैठ गई। रामचन्द्रराय ने आश्चर्य से उसे देखकर राममोहन से कहा—यह कौन है ? क्या चाहती है? इसे दीवानखाने में ले जाकर कुछ दिला दो।

विभाने आँखों में आँसू भरकर कहा—महाराज, मैं कुछ लेने

नहीं आई हूं। मैं अपना सर्वस्व दूसरों के हाथ में सौंपने आई हूं।

राममोहन ने रामचन्द्रराय से धीरे से कहा-महाराज, यह आपकी रानी यशोहर की राजकुमारी ठकुरानी बहू हैं।

रामचन्द्र राय चौंक उठे। रमाई ने उनकी ओर वक्र दृष्टि से देखकर व्यंग से कहा—क्या अब भाई उदयादित्य से मन भर गया? आज ये कैसे आई?

रामचन्द्र राय को विभा का नाम सुनकर उसके प्रति दया हो आई थी, किन्तु लोगों के हँसने का ख्यालकर उन्होंने विभा की ओर उपेक्षा से देखकर मुसकुरा दिया।

विभा के ऊपर वज्र गिर पड़ा। वह मारे लाज के सिमट गई। उसने मन ही मन कहा—पृथ्वी माता, तुम फट जाओ तो मैं समा जाऊँ। उसने राममोहन की ओर कातर दृष्टि से देखकर सिर नीचा कर लिया।

राममोहन मारे क्रोध के कांपने लगा। उसने झपटकर रमाईका गला धर दबाया और घसीटता हुआ कमरेके बाहर ढकेल दिया।

राजा ने बिगड़कर कहा-राममोहन, तुम बेअदबी कर रहो!

राममोहनने क्रोधमें भरा बोला-महाराज आप इसे बेअदबी समझते हैं! आपकी रानी और मेरी मालकिनका इस नीच ने अपमान किया है, गाली दी है। मैं यह सहन नहीं कर सकता। इसका उचित दण्ड उसे मैं दूंगा।

रामचन्द्र राय ने बिगड़कर कहा-कौन मेरी रानी है? मैंने इसे नहीं पहचाना।

विभा का मुख पीला पड़ गया। वह कांपने लगी और मूर्छित होकर वहीं गिर पड़ी।

अब राममोहन अपने को न सँभाल सका। उसने हाथ जोड़ कर कहा महाराज, मुझे आपके यहाँ नौकरी करते चार पुश्त हो गये। बाल्यावस्था में मैंने आपको गोदमें खिलाया है। आपने

आज अपनी लक्ष्मी का मेरे सामने अपमान किया है। मैं यह अनर्थ नहीं देख सकता। मैं भी जा रहा हूं। मालकिन की सेवा में ही अपना बाकी जीवन व्यतीत करूँगा। फिर कभी यहाँ न आऊँगा। मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार कीजिए। यह कहकर उसने राजा को प्रणाम किया और विभा से कहा—माँ अब यहाँ न रुको, जल्दी चल ।

विभा को पालकी पर चढ़ाकर राममोहन नाव पर ले गया। उदायादित्य को जब यह समाचार ज्ञात हुआ तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे उसी समय सबको लै कर काशी की ओर चले। में नौका एक स्थान पर किनारे लगी और लोग नित्य-कार्य लिए उतरे। विभा भी उतरकर अपना चित्त शान्त करने लिए टहलने लगी। एकाएक उसकी दृ एक खोपड़ी प पड़ी। उसे देखते ही विभा के हृदय में एक प्रकार की ग्लानि उठी और उसने विचार किया—जिस शरीर के सुख के लिए लोग इतना कष्ट सहन करते हैं, उसकी अन्त में जब यही गति होती है तो संसारिक माया में फँसना मूर्खता है। उसी समय वह नौका पर लौट आयी।

काशी पहुँचने पर विभा देवताओं की अराधना और दान पुण्य करते हुए जीवन बिताने लगी। बाकी समय उदयादित्य की सेवा में लगाती। राममोहन ने अपना शेष समय उन्हीं लोगों की सेवा में बिता दिया। सीताराम भी अपने कुटुम्ब के साथ उन्हीं लोगों के पास चला आया था।

चन्द्रद्वीप में जिस बाजार के सामने नदी तट पर विभाकी नौका लगी थी उस बाजार का नाम आज भी ठकुरानी बहू का बाजार है। जिस दिन नौका लगी थी उसी दिन हर साल व